121
कल्याण
वर्ष ३२
अङ्क १०

रघुपति राघव राजा राम । पतित-पावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक २०१५, अक्टूबर १९५८

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

तिरंगा

वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ।≡) विदेशमें ॥–) (१० पैंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
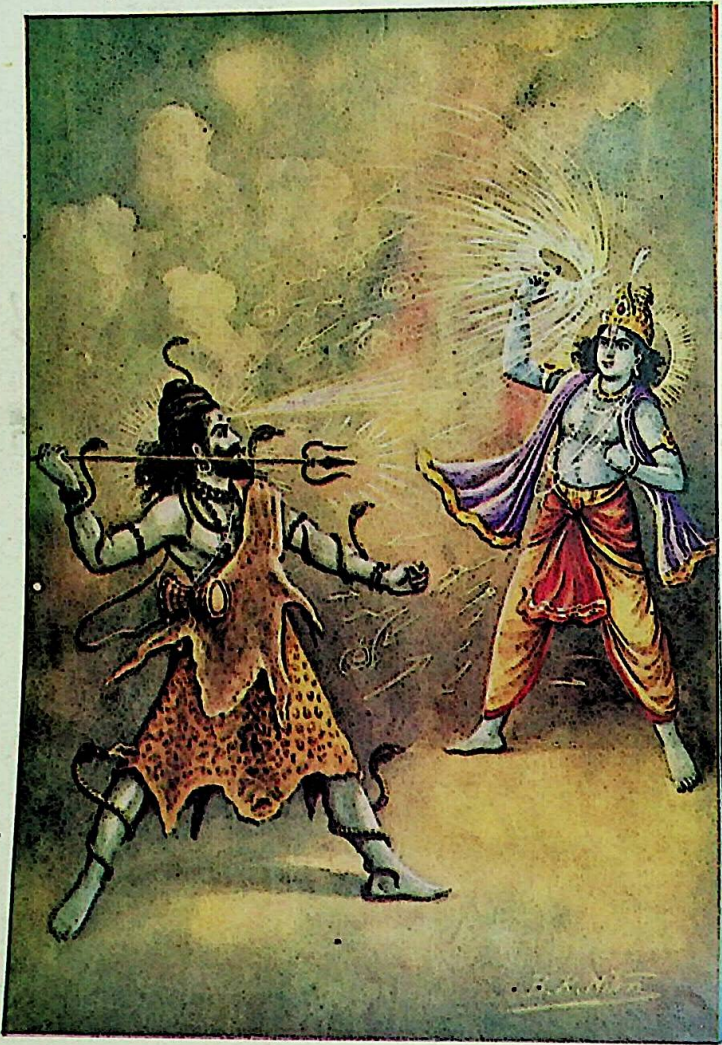
शिव-कृष्ण-युद्ध

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ये मुक्तावपि निःस्पृहाः प्रतिपदप्रोन्मीलदानन्ददां यामास्थाय समस्तमस्तकमणिं कुर्वन्ति यं स्वे वशे ।
तान् भक्तानपि तां च भक्तिमपि तं भक्तिप्रियं श्रीहरिं वन्दे संततमर्थयेऽनुदिवसं नित्यं शरण्यं भजे ॥

वर्ष ३२ } गोरखपुर, सौर कार्तिक २०१५, अक्टूबर १९५८ { संख्या १०
पूर्ण संख्या ३८३

हरि-हर-युद्ध

हरि सँग समर-रत वृषकेतु ।
भक्तवत्सल भक्त बानासुर-बचावन हेतु ॥
भुजगभूषन, सूल भीषन कोप करि कर धार ।
चक्रधर हरि संग जूझत, हृदय अतिसय प्यार ॥
अस्त्र अमित निवारि हरि, छाँड्यो जँभाई बान ।
हर जँभाई लैन लागे भूलि समर महान ॥
कुपित बानासुर कियो तब अति भयानक जुद्ध ।
हारि अंत हिं, बान ब्याही उषा सँग अनिरुद्ध ॥

कल्याण

याद रक्खो—मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदिको जानने-वाला तथा शरीरकी प्रत्येक क्रियाको देखनेवाला आत्मा नित्य, सत्य, चेतन, आनन्दरूप, अविनाशी और अपरिणामी है। मन-बुद्धि-इन्द्रिय आदिका समूहरूप जो शरीर है, वह अनित्य, असत्, जड, दुःखयोनि, क्षणभङ्गुर और परिवर्तनशील है। इससे तुम्हारा वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं है; न तो यह शरीर तुम हो और न यह शरीर तुम्हारा है।

याद रक्खो—काम आदि शत्रु जो तुमपर आक्रमण करते हैं, सुख-दुःखादिका जो घटाटोप तुमपर छा जाता है, उसका कारण यही है कि तुमने इस शरीरको 'मैं' या 'मेरा' मान लिया है। इस शरीरसे वस्तुतः तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है, न दृश्य जगत्से ही कोई सम्बन्ध है। शरीरके साथ सम्बन्ध मान लिया है, इसीसे तुम्हारा जगत्से सम्बन्ध हो गया है। और यह जगत्का सम्बन्ध तुम्हें नित्य-निरन्तर कामादि शत्रुओंसे घेरे रखता है।

याद रक्खो—तुम शुद्ध बुद्ध निरञ्जन नित्य सत्य आत्मा हो, शरीर नहीं। अतएव आत्मामें स्थित हो जाओ, अपने नित्य अनन्य-सम्बन्धी प्रभुकी सेवामें अपनेको समर्पण कर दो। तब न तो कोई शत्रु रहेगा, न किसीका तुमपर आक्रमण ही होगा।

याद रक्खो—जगत्का सम्बन्ध जबतक रहेगा, तबतक आत्मामें स्थिति या भगवान्की सेवामें जीवन समर्पित नहीं होगा और तबतक ये कामादि शत्रु तुम्हारे पीछे लगे रहेंगे। मोहकी बेड़ियाँ निरन्तर तुम्हें जकड़े रक्खेंगी। इस माने हुए मिथ्या सम्बन्धका त्याग करके अपने सदाके संगी, सदा साथ रहनेवाले भगवान्के साथ अपने नित्य सत्य अनन्य-सम्बन्धका स्मरण करके उसका अनुभव करो।

याद रक्खो—भगवान्को अपना—केवल उन्हींको अपना मान लेनेपर उनके स्मरण-चिन्तनमें जीवन लग जायगा। तब ये कामादि शत्रु स्वतः ही नष्ट हो जायँगे। जीवनमें एक नवीन पवित्र रस आ जायगा। जो सब ओरसे जीवनको निष्कण्टक, उपद्रवशून्य, विघ्नहीन बना देगा। यह जीवन शरीरका जीवन नहीं होगा। यह आत्माका नित्य जीवन होगा।

याद रक्खो—शरीरसे सम्बन्ध मान लेनेके कारण ही सांसारिक भोगोंमें सुखकी प्रतीति, उनमें प्रीति, उनके मिलनका प्रयत्न, न मिलनेपर दुःख और इसीके लिये काम-क्रोधादि शत्रुओंको मित्र माननेकी स्थिति हो गयी है। तथा ये शत्रु ही जीवनके सङ्गी बन गये हैं। जिन सांसारिक भोगोंको तुम सुख मानते हो, उनमें सुखका लेश भी नहीं है। वे तो दुःखोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं। अतः तुरंत जगत्के माने हुए सम्बन्धको त्याग दो। उस सम्बन्धका त्याग करते ही भोग-सुखका मोह भङ्ग हो जायगा और तुम सचमुच सुखी हो जाओगे।

याद रक्खो—संसारके मिथ्या सम्बन्धका त्याग करनेके लिये तुम्हें दो बातोंमेंसे एक करनी पड़ेगी। या तो यह समझना पड़ेगा कि हम वास्तवमें नित्य सत्य सर्वसम्बन्धशून्य आत्मा हैं या हम केवल श्रीभगवान्के ही सेवक हैं। या तो आत्मस्वरूप हैं या भगवान्के दास हैं। जगत्से, जगत्के किसी पदार्थ या शरीर आदिसे वस्तुतः हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इनमेंसे कोई भी अपना नहीं है। अपना स्वरूप आत्मा है या केवल भगवान् ही अपने हैं और उन्हींके साथ नित्य सत्य अविच्छिन्न अनन्य सम्बन्ध है

'शिव'

सुख-दुःख-विचार

(लेखक—स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मं तस्माद् धर्मपरो भवेत्॥

आयुर्वेदाचार्य श्रीवाग्भट्टजी कहते हैं कि एक छोटे-से-छोटे जन्तुसे लेकर ठेठ मनुष्यपर्यन्त सारे प्राणी सुखकी प्राप्तिके लिये ही कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। तब फिर सुख मिलता क्यों नहीं?—इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि सुखका मूल धर्माचरण है, अतएव यदि धर्मका अवलम्बन न किया जायगा तो सुख नहीं मिलेगा। इसलिये कहते हैं कि यदि सुखकी आवश्यकता हो तो धर्म-परायण जीवन बिताना आवश्यक है।

इसीलिये मनुमहाराज बारंबार चेतावनी देते हुए कहते हैं—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तात्पर्य यह है कि यदि धर्माचरण करते रहोगे, तो तुम्हारी रक्षा होगी, अन्यथा विनाश अवश्यम्भावी है। श्रीव्यासजी भी कहते हैं—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।

कहनेका सार इतना ही है कि किसी कामनाकी सिद्धिके लिये या किसी भयके कारण अथवा किसी पदार्थकी प्राप्तिके लोभसे या जीवनकी रक्षाके लिये भी धर्मका आश्रय नहीं छोड़ना चाहिये। अतएव जो सुखकी आशा करता है तथा उसे प्राप्त करना चाहता है, उसके लिये धर्मका अवलम्बन करना अनिवार्य है।

यहाँ कुछ लोग यह शङ्का करते हैं कि आप तो धर्माचरणकी बात करते हैं, और उससे सुखकी आशा दिखलाते हैं, परंतु प्रत्यक्षमें तो इसके विरुद्ध ही स्थिति दीखती है। धर्मके रास्तेपर चलनेवाले अधिकांशमें दुखी ही दीख पड़ते हैं। ऐसी स्थितिमें आपके शास्त्रकी बात मानें या जो प्रत्यक्ष दीखता है, उसको सत्य मानें?

इस शङ्काका समाधान करते हुए व्यासजी कहते हैं—

सर्वदा सुखदुःखाभ्यां नरः प्रत्यवरुध्यते।
शरीरं पुण्यपापाभ्यामुत्पन्नं सुखदुःखवत्॥

मनुष्य जबसे जन्म लेता है तबसे जीवनके अन्तिम क्षणपर्यन्त सुख-दुःखसे घिरा हुआ ही रहता है। (सुखके भोगसे तो मनुष्य आकुल नहीं होता, परंतु दुःखका प्रसङ्ग आते ही घबरा जाता है, अतएव दुःखकी चर्चा ही आवश्यक है।)

ऐसा क्यों होता है, इसको समझाते हुए कहते हैं, जैसे सुख-दुःख पुण्य-पापरूपी कर्मोंके फलस्वरूप प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शरीर भी उन फलोंको भोगनेके लिये ही उत्पन्न होता है। अतएव शरीर और सुख-दुःखके भोग एक ही बीजसे उत्पन्न एक ही वृक्षकी दो शाखाएँ हैं। दो शाखाएँ अलग-अलग दीखती हैं, परंतु दोनोंका मूल जैसे एक ही होता है, उसी प्रकार शरीर और उसके भोग दीखते हैं अलग-अलग—परंतु उनका मूल एक ही है। अर्थात् पुण्य-पापात्मक कर्म, जो आज प्रारब्ध बनकर फल दे रहा है। इसलिये धर्मके रास्तेपर चलनेवाला जो दुखी दीखता है, इसका कारण उसके इस जन्मके (पुण्य) कर्म नहीं, बल्कि पिछले जन्मोंके किये अशुभ कर्मके फल हैं। इस जन्मके किये हुए पुण्य-कर्मके फल, धर्माचरणके फल उसको आगामी जन्ममें अवश्य मिलेंगे; क्योंकि भोग प्रदान किये बिना कोई भी कर्म नाशको प्राप्त नहीं होता।

अब सुख-दुःखका स्वरूप समझनेके लिये विचार कीजिये—

अनुकूलवेदनीयं सुखम्। प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्॥

—जिस प्राणी-पदार्थ या परिस्थितिसे मनको अनुकूलताका बोध हो, वह सुख है और जिससे प्रतिकूलताका बोध हो, वह दुःख है। मनका स्वभाव चञ्चल होनेके कारण एक ही संयोगमें कभी प्रतिकूलता-का अनुभव होता है और कभी अनुकूलताका। इस प्रकार प्राणी, पदार्थ या परिस्थितिमें सुख-दुःख प्रदान करनेका कोई धर्म नहीं है; परंतु सुख-दुःखका आधार इस बातपर है कि मन उनको किस प्रकार ग्रहण करता है। जाड़ेमें सूर्यके तापसे सुखका अनुभव होता है और ग्रीष्ममें वही ताप दुःखदायी दीखता है। शीतल पदार्थ ग्रीष्ममें सुखद लगते हैं तथा वे ही पदार्थ जाड़ेमें दुःखद लगते हैं।

सुख-दुःखकी परिभाषा करते हुए याज्ञवल्क्य मुनि मैत्रेयीसे कहते हैं—

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।

अर्थात् मुझको इसमें ही सुख मिलेगा—इससे मेरी कामना पूर्ण होगी, ऐसी आशासे ही प्राणी-पदार्थोंमें प्रियत्वका, अनुकूल वेदनाका, सुखका आरोप होता है।

श्रीभर्तृहरि महाराज भी कहते हैं—

प्रियत्वं यत्र स्यात् तदितरमपि ग्राहकवशात्।

कोई वस्तु प्रिय लगती है या अप्रिय—इसका आधार इस बातपर है कि भोक्ता उसे किस रूपमें ग्रहण करता है। वस्तुके स्वभावमें न प्रियत्व है और न अप्रियत्व। एक चम्पाका फूल हमारे कमरेमें रक्खा हो तो वह सारे कमरेको सुवासित बना देता है, इससे वह हमें प्रिय लगता है। परंतु भ्रमर तो उसके पास भी नहीं फटकता। चन्द्रमा चकोरको शीतलता प्रदान करता है, इस कारण उसको सुखरूप जान पड़ता है, परंतु चक्रवाकको तो उसके दर्शनमात्रसे ही जलन हो जाती है, अतएव उसको दुःखरूप लगता है। इसलिये सुख-दुःखका आधार इस बातपर है कि मन उसको कैसे ग्रहण करता है।

अब यह देखना है कि सुख-दुःखके भानसे संस्कार किस प्रकार पड़ते हैं।

सुखानुशयी रागः। दुःखानुशयी द्वेषः॥

जिस-जिस प्राणी, पदार्थ या परिस्थितिमें सुख होता है, उस-उसमें राग बँधता है, और उससे रागात्मक संस्कार चित्तके ऊपर पड़ता है। इसी प्रकार जिससे दुःखका अनुभव होता है, उसमें द्वेषकी भावना बँधती है और उससे द्वेषात्मक संस्कार चित्तके ऊपर पड़ता है। यही संस्कार जब बहुत दृढ़ हो जाते हैं तब वे स्वभाव कहलाते हैं। और यह स्वभाव ही मनुष्यसे राग या द्वेषमूलक प्रवृत्ति कराता है।

विषय-भोगका प्रभाव शरीरके ऊपर कैसे पड़ता है, अब इसका विचार कीजिये। शरीर मूलतः तीन हैं, परंतु यहाँ स्थूल और सूक्ष्म—इन दोके ही साथ विषयका सम्बन्ध है, इसलिये इन्हींपर विचार करेंगे। आहारका विचार कीजिये। आहार स्थूल शरीरको दिया जाता है, और इस कारण पोषण भी उसीको मिलता है। मन रसनाके द्वारा उसमें सुख-दुःखका अनुभव करता है, और इस अनुभवके आधारपर चित्तके ऊपर राग-द्वेषात्मक संस्कार पड़ते हैं। इस प्रकार पोषण-सम्बन्धी भोक्ता स्थूल शरीर है और सुख-दुःख तथा संस्कार-सम्बन्धी भोक्ता सूक्ष्म शरीर है। एक दिन उपवास कीजिये तो उसके कारण आनेवाली दुर्बलता स्थूल शरीरमें दिखलायी देगी और सुख-दुःखका भोग मनको होगा। यदि उपवास स्वेच्छासे हुआ होगा तो उसमें सुखका अनुभव होनेसे रागात्मक संस्कार पड़ेगा और यदि परेच्छासे या दैवकी इच्छासे हुआ होगा तो उसमें दुःखका अनुभव होकर चित्तपर द्वेषात्मक संस्कार पड़ेगा।*

* यहाँ केवल सुख-दुःखको लेकर ही विचार किया गया है। अतएव शुद्ध अथवा अशुद्ध आहारसे मनके ऊपर पड़नेवाले असरकी चर्चा नहीं की गयी है।

सुख-दुःखकी समीक्षा करते हुए मनु भगवान् कहते हैं—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।

अर्थात् जिस भोग-पदार्थके मिलनेमें दूसरेके ऊपर अवलम्बित होना पड़ता है, वह स्थिति दुःखरूप है; जिसकी प्राप्तिके लिये दूसरेका आश्रय नहीं लेना पड़ता, वह स्थिति सुखरूप है। प्रथम तो भोगपदार्थका मिलना, न मिलना प्रारब्धके अधीन है, और उसके मिलनेके बाद उसका इन्द्रियोंके साथ संयोग होना न होना मनके अधीन है। और किसी विशेष भोग-पदार्थके मिलनेपर उससे मन सुखका ही अनुभव करेगा, ऐसा भी कोई नियम नहीं है। क्योंकि मन स्वभावतः चञ्चल होनेके कारण एक ही भोगमें एक समय सुखका अनुभव करता है और दूसरे समय दुःखका। इस प्रकार भोगपदार्थोंसे सुख-प्राप्तिकी आशामें सब प्रकारसे परवशता ही है, इसलिये वह स्थिति सर्वथा दुःखरूप है, भले ही मनुष्य मोहवश होकर उसमें सुख मानता हो। तब भला सच्चा सुख है क्या ?—इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि, 'सर्वमात्मवशं सुखम् ।' जिस सुखको प्राप्त करनेमें दूसरेके ऊपर अवलम्बन नहीं करना पड़ता, वही सच्चा सुख है। इसलिये आत्मज्ञानसे होनेवाला सुख ही सच्चा सुख है। अर्थात् मैं आनन्दस्वरूप हूँ, इसलिये जैसे चीनीमें मधुरताके लिये, मिर्चमें तिक्तताके लिये, लवणमें खारापनके लिये अन्य पदार्थकी अपेक्षा नहीं होती, उसी प्रकार हमारे सुखके लिये या हमारे आनन्दके लिये अन्य प्राणी, पदार्थ या परिस्थितिकी अपेक्षा नहीं है—ऐसा अनुभव होना ही आत्मज्ञानसे होनेवाला सुख है और इस कारणसे यह सुख निरतिशय है, सर्वदा रहनेवाला है, इसमें ह्रास और वृद्धि नहीं होती। भोग-पदार्थोंमें दिखलायी देनेवाला सुख यथार्थमें सुख नहीं है, बल्कि सुखकी भ्रान्ति है।

इसी कारण सुख-दुःखके सम्बन्धमें व्यासजी विष्णुपुराणमें कहते हैं—

तस्माद् दुःखात्मकं नास्ति नैव किंचित् सुखात्मकम् ।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥

इस विश्वमें कुछ भी दुःखदायक नहीं है तथा कुछ भी सुखदायक नहीं है। इस दृष्टिसे सुख-दुःखादि द्वन्द्व मनकी कल्पनाके सिवा और कुछ नहीं है। इसलिये श्रेयस्कर मार्ग यही है कि मनके चक्करमें न फँसकर श्रीवशिष्ठजीके कथनानुसार, प्रारब्धवश जो भी भोग प्राप्त हो, उसीको सिर चढ़ाकर समतापूर्वक रहना चाहिये।

स्थीयतां हि समत्वेन यथाप्राप्तानुवर्तिना ।

श्रीव्यासजी भी कहते हैं—

सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः ।
यद् यद् यथाऽऽगतं तत्तद् भुक्त्वा स्वस्थमना भवेत् ॥

गुहराजको प्रारब्धके भोगके विषयमें समझाते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं, 'सुखका भोग आवे या दुःखका—वह आता है अपने ही किये कर्मोंके फलके रूपमें ही। अन्य जन्मोंमें जो-जो कर्म किये होते हैं, उनमेंसे कुछका फल इसी जन्ममें भोगना पड़ता है, उसे भोगे बिना काम नहीं चलता। इसलिये प्रारब्धके अनुसार जिस कालमें जो भोग आवें, उन्हें शान्तिसे भोग लेना और मनको समाहित रखना चाहिये।

इस विषयमें वेदान्तदर्शन कहता है—

स्वकर्मपाशवशगः प्राज्ञो वान्यो नरो ध्रुवम् ।
प्राज्ञः सुखं नयेत् कालमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥

घोड़ेको जैसे लगामके वश करके ही चलाया जाता है, उसी प्रकार प्राज्ञ हो या अज्ञ—पण्डित हो या मूर्ख—परंतु उसको जीवन तो बिताना पड़ता है प्रारब्धके ही वशवर्ती होकर। प्राज्ञ समझता है कि आज जो दुःख आया है वह मेरा ही बोया है, मुझे ही काटना है। आम बोया हो तो आमका फल खानेको मिलेगा, और बबूल बोया होगा तो काँटा मिलेगा। इसलिये अब वर्तमान शरीरके दुःखको शान्तिसे सहन कर लेनेमें

ही बुद्धिमत्ता है और इससे मनुष्यका जीवन सुख-शान्तिसे बीतता है। अज्ञ पुरुषमें ऐसी समझ न होनेके कारण वह क्लेश उठाता है और दुःखमें जीवन बिताता है।

सुखकी इच्छा करना दुःखको निमन्त्रण देनेके समान है, ऐसा भाव व्यक्त करते हुए अवधूत दत्तात्रेय राजा यदुसे कहते हैं—

सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च।
देहिनां यद् यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः॥
(श्रीमद्भा० ११।८।१)

राजन्! इन्द्रियों और उनके विषयोंके संयोगसे होनेवाला सुख तो स्वर्गमें तथा नरकमें भी समान होता है। फिर, जिस प्रकार दुःख इच्छा किये बिना अनायास ही आते हैं, उसी प्रकार सुखके भोग भी आते हैं। इसलिये समझदार आदमीको सुखकी इच्छा ही नहीं करनी चाहिये। इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीएकनाथ महाराज लिखते हैं—

'राजन्! स्वर्ग और नरकमें विषय-सुख समान हैं। इसमें शङ्काकी कोई बात नहीं। इन्द्रको इन्द्राणीका सुख तथा सूअरको सूअरीका सुख समान है—ऐसा जानकर साधुपुरुष दोनोंमें मनको नहीं जाने देता। साधुके मनमें विषय-सुख तथा प्रेतका आलिङ्गन समानरूपसे धिक्कारने योग्य है। जैसे जीवित साँपको हाथसे पकड़नेकी कोई इच्छा नहीं करता, उसी प्रकार साधु विषयकी इच्छा नहीं करता। किसी भी जीवको दुःखकी इच्छा नहीं होती तथापि सुख और दुःख अदृष्टके अनुसार प्राप्त होंगे ही। फिर भी इसके लिये उद्योग करनेमें मनुष्य आयुको व्यर्थ गँवाता है। विषयकी लालसा छोड़कर परमार्थको सिद्ध करना उचित है, क्योंकि इसीके लिये मनुष्य-देह मिलती है।'

मनुष्य और अन्य प्राणियोंमें अन्तर इतना ही है कि मनुष्यको प्रभुने विवेक-बुद्धि दी है, जिसके द्वारा मनुष्य मानवसे देवता बन सकता है, नरसे नारायण हो जा सकता है। अन्य सब बातोंमें मनुष्य और दूसरे प्राणियोंमें किसी प्रकारकी विलक्षणता नहीं। अनुकूल विषयोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग होनेपर सुखकी अनुभूति प्राणिमात्रको एक-सी होती है। इसी प्रकार प्रतिकूल विषयोंसे दुःखकी अनुभूति भी समान ही होती है। इस बातको समझाते हुए महाभारतमें एक लघु प्रसङ्ग आया है, उसे देखिये। व्यासजी कहीं रास्तेसे चले जा रहे थे। रास्तेमें एक कीड़ा बड़े वेगसे दौड़ता हुआ उनकी नजरोंमें पड़ा। कुतूहलवश व्यासजी खड़े हो गये और कीड़ेके समीप आनेपर उसे वाणी देकर इस प्रकार बोले—

व्यासजी—'भाई, तुझको—एक क्षुद्र कीड़ेको ऐसा क्या उतावलीका काम था जो तू इतने अधिक वेगसे दौड़ रहा था?'

कीड़ा—'महाराज! आपको सुनायी न देता हो, परंतु मैं तो सुन रहा हूँ कि एक रथ इस रास्तेके ऊपर अति वेगसे दौड़ता आ रहा है, यदि उस समय मैं रास्तेके बीच रहूँ तो कदाचित् उसके पहियोंके नीचे कुचल जाऊँ और मर जाऊँ। इसी कारण मैं जोरसे दौड़कर रास्ता पार कर गया।'

व्यासजी—'अरे तुच्छ कीड़ा, तेरे इस जीवनमें ऐसा कौन-सा बड़ा भारी सुख है, जो जीनेके लिये इतनी बड़ी आशा रखता है?'

कीड़ा—'महाराज! आपकी दृष्टिमें मैं भले ही तुच्छ और अल्प आयुवाला हूँ, पर अपने मन तो मैं महान् हूँ। जो सुख-दुःखका भोग एक मनुष्य सौ वर्षमें भोगता है, उतना ही भोग हम अपने अल्प-कालके जीवनमें भोग लेते हैं। जैसा स्नेह आपको (मनुष्योंको) अपने शरीर और कुटुम्बीजनोंके प्रति है, उससे विशेष स्नेह

हमको भी है । इस कारण आनन्द-विहार करनेमें हम मनुष्यसे तनिक भी नीचे नहीं उतरते । बल्कि मुझे अपने जीवनके सुखकी अपेक्षा मनुष्यका तो क्या, इन्द्रादि देवताका भी सुख-भोग बढ़कर नहीं जान पड़ता ।'

इस दृष्टान्तसे सहज ही समझमें आ जायगा कि संसारमें भोग भोगनेमें सारे प्राणी समान ही हैं । सबको अपना शरीर एक-सा प्रिय होता है तथा जीनेकी आशा और मरनेका भय भी समान ही होता है ।

यह सब कुछ जानते हुए भी बुद्धिशाली मनुष्य उलटा ही चलता है । जो बात उसके हाथमें है, उसे करता नहीं और जो बात उसके अधिकारमें नहीं है, उसके लिये जी-तोड़ परिश्रम करता है । भावी जीवन कैसा बनायें, यह उसके हाथमें है । उसकी इच्छा हो तो शुभकर्म करके स्वर्गके सुख भोग सकता है, उसकी मर्जी हो तो पापाचरण करके नरकोंमें भी जा सकता है, और सद्बुद्धि आ जाय तो ज्ञान-सम्पादन करके इसी जन्ममें मुक्ति प्राप्त कर सकता है । इतनेपर भी परलोक सुधारनेकी ओर उसकी दृष्टि ही नहीं जाती । और वर्तमान जीवनमें अधिक-से-अधिक सुखभोग प्राप्त करनेके लिये रात-दिन परिश्रम करता रहता है। फलतः प्रारब्धके योगसे जो सुख-सुविधा आज उसे प्राप्त है, उसको भी वह भोग नहीं सकता । इस प्रकारके विषय-विमुग्ध मनुष्योंको लक्ष्य करके श्रीवशिष्ठजी कहते हैं—

केचिन्मृगा हि मृगवारिकृते भ्रमन्ति
केचित्तथा मृगमदार्थमहोऽतिव्यग्राः ।
एवं नरा वसुकृते च कलत्रलब्ध्यै
शान्तिं विहाय सततं वसुधामटन्ति ॥

कुछ हरिण पानी मिलनेकी आशासे मृगजलकी ओर दौड़ा करते हैं, दूसरे कुछ हरिण कस्तूरीकी सुगन्धमें मुग्ध होकर, उसकी प्राप्तिके लिये व्याकुल होकर चारों ओर दौड़ा करते हैं । कस्तूरी तो उनकी नाभिमें है, बाहर भटकनेसे भला कहाँसे मिलती ?

इसी प्रकार मनुष्य भी धनकी प्राप्ति तथा स्त्री-पुत्रादिके लिये रात-दिन पृथ्वीपर भटका करते हैं और इस कारण जो सुख और शान्ति उन्हें आज प्राप्त है, उसका भी उपभोग नहीं कर सकते ।

इस जन्ममें प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखका निर्माण तो मनुष्यके जन्म लेनेके पहले ही हो गया होता है, इसलिये उसको बदलनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है । इस जीवनको तो जो संबल (प्रारब्ध) लेकर मनुष्य आया है, उसीमें संतुष्ट रहकर पूरा करना पड़ेगा । प्रयत्न तो करना है भावी जीवनके लिये संबल तैयार करनेका ।

यह बात श्रीव्यासजीने नारदपुराणमें इस प्रकार समझायी है—

दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि ।
तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः ॥

मनुष्यजीवन अमूल्य है; क्योंकि इस शरीरसे ही नये कर्म हो सकते हैं । चौरासी लाख योनियोंमें तिरासी लाख निन्यानबे हजार नव सौ निन्यानवे योनियोंके शरीरोंमें तो प्रारब्धसे प्राप्त हुए भोगको भोगकर उन-उन शरीरोंको छोड़ देना पड़ता है, नवीन कर्म करनेके लिये उनमें कोई सामग्री नहीं होती । मानवदेहसे नया कर्म करके, इच्छानुसार भावी जीवन बनाया जा सकता है, इसी कारण इसको 'दुर्लभ' कहते हैं; और इसीसे देवता-लोग भी मानव-शरीर पानेके लिये सदैव उत्सुक रहते हैं । वह आज महापुण्यके प्रतापसे सहज ही मिल गया है, अतएव जीवनके प्रत्येक क्षणका तथा सारी शक्तिका उपयोग करके परलोक सुधारनेका ही यत्न करना चाहिये ।

श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—

लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद् द्विजाग्र्यताम् ।
तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान्।
द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥
(११ । २३ । २२-२३)

'करोड़ों जन्मोंके सुकृतके कारण मनुष्य-जन्म मिलता है। उसमें श्रेष्ठ ब्राह्मण-वर्णमें और सत्कुलमें जन्म मिलना दुर्लभ है। सत्य-लोकतक सारे लोक इस जन्मकी इच्छा करते हैं। ऐसा उत्तम जन्म पाकर, विषयोंके मोहमें पड़कर, मोक्षप्राप्तिरूपी स्वार्थको कौन अभागा गँवायेगा ! ऐसा देवदुर्लभ जन्म मिलनेपर भी जो मनुष्य अपना हित नहीं साधता, उसको अशुभ गति प्राप्त होती है।'

'सकाम स्वधर्मका आचरण करे तो मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति सहज ही हो जाती है; निष्काम भावसे स्वधर्मका आचरण करनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। धन या उससे मिलनेवाले विषय तो महान् अनर्थके धाम हैं; ऐसा यों समझकर इनके लिये परिश्रम करना उचित नहीं।

ऐसा देवदुर्लभ नरदेह पाकर जो मनुष्य परमार्थको सिद्ध नहीं करता, विषयभोगमें ही जीवनको व्यर्थ बिताता है, उसीको लक्ष्य करके श्रीव्यासजी एक अन्य प्रसङ्गमें कहते हैं—

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम्।
वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥
(श्रीमद्भा० ११ । २१ । २२)

काम तथा मोहमें डूबे हुए मनुष्यको कार्याकार्यका तथा अपने-परायेका भान नहीं रहता। स्वयं दुखी होनेपर भी श्रेष्ठ कर्म करना उसको नहीं सूझता और मोहके मदमें धोखा खाकर केवल विह्वल बनता है। विषय संसारचक्रमें घुमाते हैं, यह जानता है तो भी उनको वह छोड़ नहीं सकता। उसको अपना स्वार्थ भी नहीं सूझता, उसका श्वासोच्छ्वास लुहारकी धौंकनीके समान व्यर्थ है, और उसका जीवन वृक्षके समान व्यर्थ है। श्रीवसिष्ठ ऋषि भी कहते हैं—

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः।
स जीवति मनो यस्य मननेन हि जीवति ॥

वृक्ष, पशु-पक्षी तथा कीट-पतङ्गादि भी जीते हैं; परंतु जीना उसीका सार्थक है जो ईश्वरका चिन्तन करते हुए जीता है।

प्रभु सबको सन्मति दें।

मेरा जीवन भगवान्‌के प्रेमकी अभिव्यक्तिमात्र है

मेरे हृदयमें स्थित भगवान् मेरी नवचेतनाके प्राण हैं, मेरे आनन्दमय जीवनकी मूलभित्ति हैं, मेरी प्रसन्नताके आधार हैं। भगवान्‌की स्थिति मेरी नित्य स्वस्थता और शान्तिके रूपमें अभिव्यक्त है।

जब मैं अपने हृदयमें स्थित भगवान्‌की अनुभूति करता हूँ तो मेरी नसोंमें नवीन चेतना, नवीन उत्साह, नवीन जीवन प्रधावित होने लगता है। इससे मुझे यह विश्वास होता है कि हृदयमें स्थित भगवान् नवजीवनके प्राण हैं; तथा मैं शरीरमें नया जीवन, भावोंमें नवीन बल और मनमें नवीन शान्तिका अनुभव करता हूँ।

भगवान्‌का आनन्दस्वरूप मेरे चिन्तनको आनन्दसे भरता है, और मुझमें जीवनके प्रति नया उत्साह, नयी उमंग उत्पन्न हो रही है। भगवान्‌का प्रेम-स्वरूप मेरे हृदयको प्रेम और स्नेहसे परिपूर्ण करता है और मैं अपने सम्पर्कमें आनेवालेको प्रेम और स्नेहसे अभिषिक्त करता रहता हूँ। भगवान्‌का चैतन्य-स्वरूप मेरे अणु-अणुमें नवीन शक्ति, नवीन स्फूर्ति, नवीन चेतना भर रहा है और सेवाके रूपमें मेरी प्रत्येक क्रियामें उसकी अभिव्यक्ति हो रही है।

मेरा जीवन, मेरे जीवनकी प्रत्येक चेष्टा हृदयमें स्थित भगवान्‌की, उनके प्रेमकी अभिव्यक्ति मात्र है।

भगवान्‌का विस्मरण कभी न हो

(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके एक भाषणसे)

मनुष्यके लिये सर्वोत्तम बात यह है कि वह एक क्षणके लिये भी भगवान्‌को न भूले । जो मनुष्य यह नियम ले लेता है कि मैं एक क्षणके लिये भी भगवान्‌की नहीं भूलूँगा, उसको इसी जन्ममें भगवान्‌की प्राप्ति होनेमें तनिक भी संदेहके लिये स्थान नहीं है । भगवान् गीतामें कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(८ । १४)

'हे अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ ।'

भगवान्‌की इस घोषणापर विश्वास करके यह निश्चय कर लेना चाहिये कि 'इसी क्षणसे मृत्युपर्यन्त मैं जान-बूझकर भगवान्‌को नहीं भूलूँगा ।' ऐसा निश्चय सच्चा होनेपर भगवान् उसमें सहायता करते हैं और अन्तमें उस भक्तकी इच्छा पूर्ण करते हैं । कभी कुछ भूल भी हो जाती है तो भगवान् उसे क्षमा कर देते हैं । यदि कोई कहे कि '१८ घंटे तो मनुष्य भगवान्‌का स्मरण कर सकता है, परंतु सोनेके समय ६ घंटे उनका स्मरण करना उसके वशकी बात नहीं है', तो इसके लिये यह नियम है कि जाग्रत्-अवस्थामें मनुष्य जो काम करता है, स्वप्नमें उसका मन प्रायः उसीकी स्मृतिमें लीन रहता है । ऐसा देखनेमें आया है कि जो जाग्रत्-अवस्थामें निरन्तर भगवान्‌को स्मरण रखते हैं, स्वप्नमें भी उन्हें भगवान्‌की ही स्मृति रहती है । इतना ही नहीं, जो सोनेके कुछ समय पूर्व ही भगवान्‌का स्मरण करते हैं और स्मरणके बीचमें निद्राग्रस्त हो जाते हैं, उन्हें भी प्रायः भगवद्-विषयक ही स्वप्न आते रहते हैं । अतएव यह चेष्टा रखनी चाहिये कि होश रहते हुए भगवान्‌का स्मरण न छूटे । जान-बूझकर भगवान्‌को एक क्षणके लिये भी नहीं भूलना चाहिये; क्योंकि जिस क्षण हमने भगवान्‌को भुलाया तथा मनको पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य, देवता आदिके चिन्तनमें लगाया और संयोगसे उसी क्षण प्राण छूट गये तो हमारे चिन्तनके अनुसार हमें पशु-पक्षी आदिकी योनि ही प्राप्त होगी—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

(गीता ८ । ६)

'हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है ।'

यह मानव-जीवनकी कितनी बड़ी हानि है ! मानव-जीवनकी दुर्लभतापर विचार करनेसे इस हानिकी भयानकताका कुछ अनुमान हो सकता है । चौरासी लक्ष योनियोंमें भटकता-भटकता जीव जब बेहाल हो जाता है, तब भगवान् विशेष कृपा करके उसे मानव-देह प्रदान करते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥

ऐसा सुदुर्लभ मानव-जीवन व्यर्थ न जाय, इसके लिये भगवान् उपाय बताते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।

(गीता ८ । ७)

'इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर ।'

भगवान्‌ने स्मरणकी बात मुख्य रूपमें कही है, युद्ध

करनेकी गौणरूपमें । इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्का स्मरण एक क्षणके लिये भी न छूटे, अन्यथा मानव-जीवन व्यर्थ सिद्ध हो सकता है ।

जो मनुष्य भगवान्में अपने मनको लगा देते हैं, उनको निश्चय ही भगवान्की प्राप्ति हो जाती है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
(गीता १० । १०)

'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेम-पूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ।'

इसलिये भगवान्ने अर्जुनको आदेश दिया—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥
(गीता १२ । ८)

'मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धिको लगा; इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।'

भगवान् जब इतना विश्वस्त आदेश देते हैं तो फिर हमारे मन और बुद्धि और क्या काम आयेंगे ? इन दोनोंको इसी क्षणसे भगवान्के काममें ही लगा देने चाहिये ।

बुद्धिको भगवान्में लगा देना यह है कि विज्ञाना-नन्दघन परमात्मा सब जगह समानभावसे आनन्दरूपसे विराजमान हैं, सब जगह आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण है, आनन्दके सिवा और कुछ है ही नहीं—इस प्रकार-के ध्यानमें स्थित रहना । इस प्रकारके ध्यानका फल अनायास ही परमात्माकी प्राप्ति है । बुद्धिमें खूब अच्छी तरहसे यह निश्चय हो जाना चाहिये कि निराकाररूपमें सब जगह हमारे ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर समान भावसे केवल एक परमात्मा ही हैं ।

बुद्धिके इस नियमके अनुसार मनसे मनन करना—मनको भगवान्में लगाना है । इसका फल भी परमात्मा-की प्राप्ति ही है ।

भगवान्को छोड़कर किसी भी पदार्थका चिन्तन करना अपने गलेमें फाँसी लेकर मरनेके सदृश है; क्योंकि उससे हम मानव-जीवनके लक्ष्यको खो बैठेंगे । मूल्यवान्-से-मूल्यवान् पदार्थका चिन्तन भी हमें भगवान्की प्राप्ति नहीं करा सकेगा । इसलिये बड़ी तत्परता-पूर्वक ऐसा अभ्यास डालना चाहिये कि भगवान्को छोड़कर मन और किसी पदार्थके चिन्तनमें लगे ही नहीं । समय बड़ा मूल्यवान् है । मानव-जीवनके गिने-गिनाये श्वास हमें मिले हैं । लाख रुपये खर्च करनेपर भी उससे अधिक एक मिनटका समय भी नहीं मिल सकता । मानव-जीवनके एक क्षणकी कीमत भी नहीं आँकी जा सकती; क्योंकि वह क्षण भगवान्की प्राप्ति करा सकता है । फिर समूचे मानव-जीवनकी तो बात ही क्या है । मानव-जीवनका यह महत्त्व इसीमें है कि वह भगवान्की प्राप्तिमें हेतु बन सकता है । अन्य किसी भी योनिमें यह सम्भव नहीं । अतएव मानव-जीवनके समयको खर्च करनेमें बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये । परमात्माके अतिरिक्त दूसरे कामोंमें समय लगानेवालोंको संतोंने मूर्ख कहा है ।

सांसारिक पदार्थोंके संग्रहमें लगाया हुआ समय भी व्यर्थ है । एक महीनेमें हमारे लाख रुपयेका रोजगार होता है । १२ महीनोंमें १२ लाखका हुआ, तो इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ? रुपयोंकी थैलियाँ यहीं रह जायँगी, जीवको अकेले ही जाना पड़ेगा । हाँ, रुपयों-को बटोरनेमें जो पाप-पुण्य उसने किये हैं, वे अवश्य उसके साथ रहेंगे । अतएव रुपयेके संग्रहमें दो बातोंका ध्यान रखना चाहिये—न तो उसके संग्रहके लिये भगवान्को भुला देना चाहिये, और न उसके संग्रहमें पापका आश्रय लेना चाहिये । मरनेपर रुपयों

हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा। गधा ढो-ढोकर मिट्टी इकट्ठी करता है; भगवान्‌को भूलकर रुपये बटोरना ठीक ऐसा ही है। मरनेपर न गधेके मिट्टी काम आती और न हमारे रुपया काम आता है। इस न्यायसे मनुष्य-जीवनका समय धन बटोरनेमें क्यों बरबाद किया जाय?

कुछ भाई इस शरीरके पोषणमें समयको लगाते हैं। नाशवान् शरीरके पोषणमें समयका लगाना उसका अपव्यय है। विशेष खान-पान, सावधानी आदिसे शरीरमें १० सेर मांस बढ़ गया तो क्या हो गया। आखिर तो मरना ही पड़ेगा। शरीर अधिक भारी हो गया तो लाश (शव) भी भारी होगा। शव ढोनेवाले यही कहेंगे कि 'लाश बड़ी भारी है'। इस मोटापेसे और होगा क्या? मोटे शरीरके जलनेपर एक-दो सेर राख अधिक हो जायगी। शवकी राख किस कामकी? किसीकी आँखमें गिरकर वह उसको कष्ट ही दे सकती है। अतएव शरीरको अधिक पुष्ट करनेमें समयको लगानेसे कोई लाभ नहीं।

कुटुम्ब-पालनमें भी भगवान्‌को भूलकर रागयुक्त मनसे समय नहीं लगाना चाहिये। कुटुम्बका राग तो और अधिक दुःख देनेवाला है। अनन्त कालसे कुटुम्ब हमको धोखा देता चला आ रहा है। आजसे पूर्व भी तो हमलोग किसी कुटुम्बके थे। क्या उसकी अब हमको कुछ स्मृति भी है? अब हमें कुछ भी स्मरण नहीं है कि पूर्व जन्ममें हम कहाँ थे, हमारा कौन कुटुम्ब था। इसी प्रकार यहाँसे विदा होनेपर यह कुटुम्ब भी याद नहीं रहेगा। सौ-दो-सौ वर्षोंके बाद तो यह कुटुम्ब कहाँ-से-कहाँ चला जायगा, कुछ भी पता नहीं है। अतएव मृत्युके साथ जिससे बिल्कुल सम्बन्ध-विच्छेद हो जानेवाला है, उस अपने कुटुम्बके प्रति मोह-ममता रखकर भगवान्‌को भुला देना और समयको उसके पालन-पोषणमें नष्ट कर देना मानव-जीवनका दुरुपयोग है।

यदि हम मकान बनवानेमें अपने समयको खर्च करते हैं और भगवान्‌को भूल जाते हैं तो यह भी मूर्खता है। मकान बनवा लिया तो न जाने उसका भोग कौन करेगा। जिसको मकानकी आवश्यकता होगी, वह अपने-आप मकान बनवा लेगा। हम झूठ-साँच करके अपना अमूल्य मनुष्य-जीवन उसके पीछे क्यों लगायें। इसी प्रकार संसारके अन्य पदार्थोंकी बात है। संसारमें जिन-जिन पदार्थों, वस्तुओं आदिको हम अपनी मान रहे हैं, वे हमारी नहीं हैं; उनसे हमारा वियोग अवश्यम्भावी है। अतएव उनके संग्रह-संरक्षणमें भगवान्‌को भुला देना उचित नहीं। अध्यात्म-दृष्टिसे परमात्माकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले कर्मोंके अतिरिक्त सभी कर्म व्यर्थ अथवा अनर्थ हैं। यह मानव-जीवन आत्माके कल्याणके लिये ही मिला है, व्यर्थके भोग भोगनेके लिये नहीं। स्वर्गके भोगोंके लिये प्रयत्नशील होना भी व्यर्थ है। 'स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।' अतः आत्माके कल्याणमें सहायक होनेवाले कार्यके अतिरिक्त किसी भी कार्यमें लगना मूर्खता है। आयु क्षण-क्षणमें व्यतीत हो रही है। इसलिये जिस कामके लिये आये हैं, उसको शीघ्र कर लेना चाहिये। कालका भरोसा नहीं है। एक क्षणके बाद क्या होनेवाला है, कोई नहीं बता सकता। ऐसी परिस्थितिमें एक क्षणके लिये भी भगवान्‌को भूलना खतरेसे खाली नहीं है।

संसारके जिन-जिन पदार्थोंसे हमारा सम्बन्ध है, वे अवश्य बिछुड़नेवाले हैं। इस शरीरके सभी सम्बन्ध काल्पनिक और नाशवान् हैं, यों समझकर उनके प्रति मोह-ममताको पहलेसे समेट लें तो उत्तम है। विवेक-पूर्वक हमने ऐसा कर लिया तो हम मुक्त हो जायँगे और यदि हमको विवश होकर इन सम्बन्धोंको तोड़ना पड़ा तो हम भटकते फिरेंगे। जो जन्मा है उसे अवश्य मरना पड़ेगा। लाख प्रयत्न करनेपर भी मृत्युसे छुटकारा नहीं हो सकता। जब मरना ही है तो दो दिन आगे मरे या दो दिन

पीछे। इसकी क्या चिन्ता ? बस, जिस कामके लिये आये हैं, उसे अवश्य कर लेना चाहिये; नहीं तो आगे जाकर घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

'जो मनुष्य इस समय सचेत नहीं होता, उसको आगे चलकर सिर धुन-धुनकर घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। वह मूर्ख उस समय कालु और कर्मपर झूठा दोष लगायेगा।' वह यही कहेगा—'कलियुगके कारण मैं अपने आत्माका कल्याण नहीं कर सका।' मेरे कर्म ही ऐसे थे, मेरे भाग्यमें ऐसी ही बात लिखी थी। ईश्वरने मेरी सहायता नहीं की, आदि-आदि। उसका यह रोना व्यर्थ है—मिथ्या है। अतएव अभीसे सावधान हो जाना चाहिये।

परमात्माकी प्राप्ति स्वयं अपने किये ही होगी। कोई दूसरा हमारे लिये इस कार्यको नहीं कर सकेगा। संसारका कोई काम बाकी रह गया तो हमारे पीछे हमारे उत्तराधिकारी अथवा दूसरे लोग कर लेंगे; पर परमात्माकी प्राप्तिमें यदि त्रुटि रह गयी तो हमको पुनः जन्म लेना पड़ेगा। अतएव जो काम हमारे किये ही होगा और जिसको करना अनिवार्य है, उसीमें समय लगाना चाहिये।

संसारके सब सम्बन्ध मिथ्या हैं, स्वप्नवत् हैं, माया-मात्र हैं। स्वप्नके संसारमें जो कुछ होता है, सब सत्य प्रतीत होता है; परंतु वास्तवमें उसकी सत्ता नहीं। आँख खुलनेपर न वह शरीर रहता है और न वे व्यवहार। इसी प्रकार संसारके जितने भी सम्बन्ध हैं, ये सब शरीरको लेकर ही हैं; शरीर शान्त होनेपर इनसे हमारा कुछ भी लगाव नहीं रह जायगा। इसलिये आवश्यकता है इन सम्बन्धोंका त्याग हम मनसे पहलेसे ही कर दें, जिससे आगे चलकर पश्चात्ताप न हो।

जबतक मानव-जीवन शेष है, तबतक सब कुछ हो सकता है। परमात्माकी शरण लेकर मनुष्य जो चाहे, वह प्राप्त कर सकता है। कठोपनिषद्में यमराजने नचिकेताके प्रति यह बात कही है कि 'नचिकेतः! ओम् जो परमात्माका नाम है, यही साक्षात् ब्रह्म है; यही सगुण और निर्गुण है। इसकी शरण जानेपर जो चाहो, वही मिल सकता है।'

अतएव हम भी भगवान्की शरण लेकर जो चाहें, वह कर सकते हैं। दूसरी बात यह है कि भगवान्के सिवा अन्य कोई भी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। दूसरी किसी भी वस्तुकी इच्छा करना मूर्खता है। जगत्की जितनी भी वस्तुएँ हैं, सब प्रारब्धके अधीन हैं। कोई चाहे कि मैं १०० वर्ष जीता रहूँ तो यह असम्भव है। इसी प्रकार कोई यह चाहे कि अभी मृत्यु आ जाय तो चाहनेसे मृत्यु भी नहीं मिल सकती। जब जैसा प्रारब्ध होगा, वैसा ही होगा। अतएव इच्छा करना मूर्खता है। इसी प्रकार भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति-अप्राप्तिकी बात है। प्रारब्धवश जब जितना मिलना है, उतना ही मिलेगा।

भगवान्की प्राप्ति इच्छासे होती है। इच्छा जहाँ यथेष्ट तीव्र एवं अनन्य हुई कि भगवान् मिले। भगवान्को छोड़कर अन्य कोई भी पदार्थ हमारी इच्छापर निर्भर नहीं है। जगत्के सभी प्राणी चाहते हैं कि सुख मिले, दुःख नहीं; किंतु अधिकांशको दुःखकी ही उपलब्धि होती है। अतएव जड पदार्थोंके लिये इच्छा करना मूर्खता है; इच्छा करनेसे जड पदार्थ प्राप्त नहीं होते। उनके लिये पूर्वकृत कर्मोंका फल—प्रारब्ध चाहिये; और वह अब हमारे हाथमें नहीं। पर भगवान्के लिये इच्छा करनेपर वे अवश्य मिल जायँगे। अतः भगवान्को प्राप्त करनेकी इच्छा करनी चाहिये और उसे यथेष्ट तीव्र एवं अनन्य बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

भगवान्के मिलनमें जो देर हो रही है, इसमें त्रुटि

हमारी ही है। भगवान् तो नित्य मिलनके लिये आतुर हैं, बस, हममें वैसी इच्छा होनी चाहिये। भगवान्‌के मिलनकी इच्छाकी जागृतिके लिये एकान्तमें बैठकर करुणाभावसे हृदय खोलकर रोना चाहिये। अपने अपराधोंको स्मरणकर गद्गद होकर भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये—'प्रभो! आपके अतिरिक्त संसारमें मेरा और कौन है? नाथ! मैं आपके शरण हूँ, आप मेरी रक्षा करें।' भगवान् बड़े दयालु हैं, वे अपने सम्मुख होनेवालेके अनन्त जन्मोंके पापोंको उसी क्षण क्षमा कर देते हैं।

अपने आत्माकी उन्नति उत्तरोत्तर एवं तीव्रताके साथ करनी चाहिये। कल हमने जो साधन किया, उससे आज तीव्रतर होना चाहिये, आजसे आनेवाले कलको और तीव्र होना चाहिये। इसी प्रकार प्रातःकालसे मध्याह्न, मध्याह्नसे सायंकाल, सायंकालसे रात्रिमें और रात्रिसे अगले दिन प्रातःकालके साधनमें क्रमशः तीव्रता रहनी चाहिये। घंटे-घंटेमें, फिर क्षण-क्षणके साधनमें उत्तरोत्तर तीव्रता होनी चाहिये। यदि इस प्रकार प्रयत्न किया जाय तो परमात्माकी प्राप्ति होनेमें विलम्ब नहीं हो सकता।

किसीने कहा है—'पाय परमपद हाथ सों जात'—पाया हुआ परमपद हाथसे जा रहा है। सचमुच मानव-जीवनको व्यर्थ खोना परमपद हाथसे जानेके सदृश ही है। अतएव 'गयी सो गयी अब राख रही को।' जीवनका जो समय बीत गया, वह बीत गया; पर अब एक क्षण भी परमात्माकी स्मृतिके बिना न बीते। निरन्तर सावधानी रहे। पूरी तत्परता हुई तो जितना समय जीवनका बचा है, उतना ही पर्याप्त है। इतने समयमें ही भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। यदि कुछ कमी रह गयी तो भी भयकी कोई बात नहीं। दूसरा जन्म लेते ही कल्याण हो सकता है—

"योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।

'अथवा ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेता है।' और उसके चित्तमें स्वाभाविक ही वैराग्य रहता है। वहाँ अच्छे सङ्गसे उसका चित्त निरन्तर उन्नति करता जाता है और अन्तमें वह भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है।

आजकल बिजलीसे चलनेवाली एक मशीन बनी है। उसके सामने जैसी आवाज की जाती है, वह उसको रेकर्ड कर लेती है। अब वह मशीन जहाँ जाती है, उसके साथ वह शब्द भी जायगा। इसी प्रकार हमारे जीवनमें जो-जो कार्य होते हैं, वे संस्काररूपसे अन्तःकरणमें एकत्रित हो जाते हैं और मृत्युके पश्चात् वे हमारे साथ जाते हैं। आगेके जीवनमें ये अच्छे-बुरे संस्कार मनकी स्फुरणामें हेतु बनते हैं। अतः जीवनके नाना कार्योंसे हृदयमें जो बुरे संस्कार एकत्रित हो रहे हैं, उनको मृत्युसे पूर्व धो डालना चाहिये। साबुन और जलसे जिस प्रकार कपड़ा धोकर साफ कर लेते हैं, उसी प्रकार अन्तःकरणमें जो पापरूपी मैल जमा हो गयी है, उसको भगवन्नाम-रूपी साबुन तथा निष्कामभावरूपी जलद्वारा साफ कर लेना चाहिये। बुद्धि और मनमें अच्छा संग्रह करना चाहिये। बुद्धिमें जो ज्ञान है, वह अच्छा संग्रह है। परमार्थविषयक जो ज्ञान है, वही यथार्थ ज्ञान है। बुद्धिमें धृति, क्षमा, शान्ति, समता, संतोष, ज्ञान, वैराग्य—इन सात्त्विक भावोंका संग्रह करना चाहिये। मनमें भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन एवं भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यकी बातें एकत्रित करनी चाहिये। भगवान्‌के नाम, रूप, लीला और धामका मनन करना चाहिये। इन्द्रियोंको तपस्याद्वारा तपाकर शुद्ध कर लेना चाहिये। फिर इन्द्रियोंद्वारा भगवान्‌के दर्शन, भगवान्‌के साथ सम्भाषण, भगवान्‌का स्पर्श आदि करना चाहिये। मनसे ऐसी भावना करे कि भगवान् हमारे सामने खड़े हैं, हमारी ओर देख रहे हैं, हम उनके चरणोंका स्पर्श कर रहे हैं, उनके चरणोंसे

निस्सरित दिव्य गन्ध ले रहे हैं, भगवान्से वार्तालाप कर रहे हैं, भगवान्की वाणीको कानोंसे सुन रहे हैं। हाथोंसे जीवमात्रकी भगवान् नारायणकी भावनासे सेवा करनी चाहिये। वाणीसे सत्य, प्रिय और हितकर वचन बोलने चाहिये। नेत्रोंसे भगवान्को, संतोंको अथवा उत्तम दृश्योंको देखना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रियको शुद्ध बनाकर उसमें ऐसे भाव भरने चाहिये, जो मुक्तिमें सहायक हों। यदि इस जीवनमें काम न बने तो उत्तम संस्कार तो हमारे साथ जायँ। निष्कामभावसे यह सब करना परम हितकर है। सावधानीके साथ अभ्यास करनेसे हृदयमें जो दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, मल, विक्षेप, आवरण, निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि बुरे संस्कार हैं, वे बहुत शीघ्र सर्वथा धुल जाते हैं, और हृदय भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार और सद्गुणोंसे भर जाता है। वस्तुतः दैवी सम्पत्ति और शरीर, वाणी और मनका तप—ये अमृततुल्य हैं, और राजसी एवं तामसी भाव विष हैं; इनसे मनुष्यका पतन निश्चित है।

सर्वोत्तम एवं सबसे सरल साधन है—भगवान्का चिन्तन। भगवान्का चिन्तन प्रेमपूर्वक नित्य-निरन्तर करना चाहिये। पर यदि प्रेम न भी हो तो भगवान्का चिन्तन हृदयको शुद्ध करता ही है। भगवान्का चिन्तन यदि कोई वैर-भावसे, द्वेषवश या भयसे भी करता है तो उसका भी कल्याण हो जाता है। मारीचने भगवान् रामका भयसे चिन्तन किया, उसका उद्धार हो गया। कंसने भगवान्का द्वेषभावसे चिन्तन किया, उसका भी कल्याण हो गया। फिर जो प्रेमपूर्वक करुणाभावसे भगवान्का चिन्तन करे, उसके कल्याणमें तो कहना ही क्या है? व्रजकी गोपियोंका उदाहरण प्रत्यक्ष है। गोपियोंने करुणाभावसे भगवान्का चिन्तन किया, तब उनके उद्धारमें कहना ही क्या है। अतएव मन जहाँ भी जाय, भगवान्का ही चिन्तन करे। रातको चिन्तन करते-करते ही सोया जाय। रातमें जब-जब निद्रा टूटे, जब-जब उठना पड़े, तब-तब मनकी सम्हाल कर लेनी चाहिये कि चिन्तन हो रहा है या नहीं।

एकान्तमें जप-साधन करनेके लिये बैठे तो प्रारम्भमें भगवान्की स्तुति-प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये। गीता, रामायण आदिका स्वाध्याय अर्थ और भावको समझकर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक करना चाहिये।

वेदोंसे हमें चेतावनी मिलती है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

महापुरुषोंके पास जाकर जानने योग्य परमात्म-तत्त्वको समझना चाहिये।

समय रहते चेत हो जाय तो ठीक है, अन्यथा—

समय चुकें पुनि का पछिताने।

मृत्यु सिरपर आ खड़ी होगी, और सब गुड़ गोबर हो जायगा। तुलसीदासने कितने कड़े शब्दोंमें चेतावनी दी है—

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंद मति आत्माहन गति जाइ॥

'जो मनुष्य ऐसे अवसरको पाकर भी भवसागरको पार नहीं करता, वह निन्दाका पात्र और मन्दमति है। आत्महत्यारेकी जो गति होती है, वही उसकी भी होती है।' अतएव उत्तम देश, उत्तम जाति, उत्तम काल, उत्तम धर्म, उत्तम सङ्ग—इन सबका सुन्दर सुयोग पाकर भी जो अपनी आत्माका उद्धार नहीं करता, वह मूर्ख नहीं तो और क्या है।

नारायण स्वामी कहते हैं—'दो बातोंको मत भूलो, एक मौतको और दूसरे भगवान्को'। भगवान्को याद रखनेसे पापोंका नाश होकर कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है और मृत्युको याद रखनेसे आगे पाप नहीं बनते।

और कुछ भी न हो तो भगवान्का जो भी नाम प्रिय लगे, उसे ही रटते जाइये—वही आपको निहाल कर देगा—

केशव केशव कूकिये नहिं कूकिये असार।
रात दिवस की कूक तें कबहुँ तो सुने पुकार॥

स्वयं भगवान्‌का दिव्य जन्म-महोत्सव

(हनुमानप्रसाद पोद्दारका भाषण)

मुदिरमदमुदारं मर्दयन्नङ्गकान्त्या
वसनरुचिनिरस्ताम्भोजकिञ्जल्कशोभः ।
तरुणिमतरणीक्षाविक्लवद्बाल्यचन्द्रो
व्रजनवयुवराजः काङ्क्षितं मे कृपीष्ट ॥
नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम् ।
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं
कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारं ॥

अजन्माका जन्म

आज श्रीकृष्णजन्माष्टमी है। निखिल विश्वब्रह्माण्डके लिये महान् महिमामय, महान् मङ्गलमय, महान् मधुमय और महान् ममतामय यह धन्य दिवस है। आजके ही दिन इसी भारतमें, मथुराके कंस-कारागारमें सर्वलोकमहेश्वर, सकल-ईश्वरेश्वर, सर्वशक्तिमान्, नित्य निर्गुण-सगुण, सकल अवतार-मूल, सर्वमय-सर्वातीत अखिलरसामृतसिन्धु स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य जन्म हुआ था। यह नित्य अजन्माका जन्म बड़ा ही विलक्षण है। इस दिव्य जन्मको जाननेवाले पुरुष जन्मबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जिस मङ्गलमय क्षणमें इन परमानन्दघनका प्राकट्य हुआ, उस समय मध्यरात्रि थी, चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था; परंतु अकस्मात् सारी प्रकृति उल्लाससे भरकर उत्सवमयी बन गयी। महाभाग्यवान् श्रीवसुदेवजीको अनन्त सूर्य-चन्द्रके सदृश प्रचण्ड शीतल प्रकाश दिखलायी पड़ा और उसी प्रकाशमें दिखलायी दिया एक अद्भुत बालक। श्यामसुन्दर, चतुर्भुज, शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मसे सुशोभित, कमलके समान सुकोमल और विशाल नेत्र, वक्षःस्थलपर श्रीवत्स तथा भृगुलताके चिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि, मस्तकपर महान् वैदूर्यरत्नखचित चमकता हुआ किरीट, कानोंमें झलमलाते हुए कुण्डल, जिनकी प्रभा अरुणाभ कपोलोंपर पड़ रही है। सुन्दर काले घुँघराले केश, भुजाओंमें बाजूबंद और हाथोंमें कङ्कण, कटिदेशमें देदीप्यमान करधनी, सब प्रकारसे सुशोभित अङ्ग-अङ्गसे सौन्दर्यकी रसधारा बह रही है। कैसा अद्भुत बालक ! मानव-बालक माताके उदरसे निकलते हैं, तब उनकी आँखें मुँदी होती हैं। दाई पोंछ-पोंछकर उन्हें खोलती है, पर इनके तो आकर्ण विशाल, निर्मल, पद्मसदृश सुन्दर नेत्र हैं। सम्भव है, कहीं अधिक भुजावाला बालक भी जन्म जाय; परंतु इनके तो चारों हाथ दिव्य आयुधोंसे सुशोभित हैं। साधारणतया अलंकारोंसे बालकोंकी शोभा बढ़ा करती है; किंतु यहाँ तो ऐसा शोभामय बालक है कि इसके दिव्य देहसे संलग्न होकर अलंकारोंको ही शोभा प्राप्त हो रही है। ऐसा अपूर्व बालक कभी किसीने कहीं नहीं देखा-सुना। यही दिव्य जन्म है। वास्तवमें भगवान् सदा ही जन्म और मरणसे रहित हैं। जन्म और मृत्यु प्राकृत देहमें ही होते हैं। भगवान्‌का मङ्गलविग्रह अप्राकृत ही नहीं, परम दिव्य है। न वह कर्मजनित है न पाञ्चभौतिक है। वह नित्य सच्चिदानन्दमय 'भगवद्देह' है। शाश्वत और हानोपादानरहित, स्वरूपमय है। उसके आविर्भावका नाम जन्म है और उसके इस लोकसे अदृश्य हो जानेका नाम 'देह-त्याग' है।

प्राकृतदेह और भगवद्देह

देह प्रधानतया दो प्रकारके होते हैं—प्राकृत और अप्राकृत। प्रकृतिराज्यके समस्त देह प्राकृत हैं और प्रकृतिसे परे दिव्यचिन्मयराज्यके अप्राकृत। प्राकृत देहका निर्माण स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन भेदोंसे होता है। जबतक 'कारण' देह रहता है, तबतक प्राकृत देहसे मुक्ति नहीं मिलती। इस त्रिविध-देहसमन्वित प्राकृत देहसे छूटकर—प्रकृतिसे विमुक्त होकर केवल आत्मरूपमें ही स्थित होने या भगवान्‌के चिन्मय पार्षदादि दिव्य स्वरूपकी प्राप्ति होनेका नाम ही 'मुक्ति' है। मैथुनी-अमैथुनी, योनिज-अयोनिज—सभी प्राकृत शरीर वस्तुतः योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं। इनमें कई स्तर हैं। अधोगामी बिन्दुसे उत्पन्न शरीर अधम है और ऊर्ध्वगामीसे निर्मित उत्तम। कामप्रेरित मैथुनसे उत्पन्न शरीर सबसे निकृष्ट है, किसी प्रसङ्गविशेषपर ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्पसे बिन्दुके अधोगामी होनेपर उससे उत्पन्न होनेवाला शरीर उससे उत्तम द्वितीय श्रेणीका है; ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्पमात्रसे केवल नारी-शरीरके मस्तक, कण्ठ, कर्ण हृदय या नाभि आदिके स्पर्शमात्रसे उत्पन्न शरीर द्वितीयकी अपेक्षा भी उत्तम तृतीय श्रेणीका है। इसमें भी नीचेके अङ्गोंकी अपेक्षा ऊपरके अङ्गोंके स्पर्शसे उत्पन्न शरीर अपेक्षाकृत उत्तम है। बिना स्पर्शके केवल दृष्टिद्वारा उत्पन्न उससे भी उत्तम चतुर्थ श्रेणीका है और बिना ही देखे संकल्पमात्रसे

उत्पन्न शरीर उससे भी श्रेष्ठ पञ्चम श्रेणीका है। इनमें प्रथम और द्वितीय श्रेणीके शरीर मैथुनी हैं। शेष तीनों अमैथुनी हैं। अतएव पहले दोनोंकी अपेक्षा ये तीनों श्रेष्ठ तथा शुद्ध हैं। इनमें सर्वोत्तम पञ्चम शरीर है। स्त्री-पिण्ड या पुरुष-पिण्डके बिना भी शरीर उत्पन्न होते हैं; परंतु उनमें भी सूक्ष्म योनि और बिन्दुका सम्बन्ध तो रहता ही है। प्रेतादि लोकोंमें वायुप्रधान और देवलोकादिमें तेजःप्रधान तत्तत्-लोकानुरूप देह भी प्राकृतिक—भौतिक ही हैं। योगियोंके सिद्धिजनित 'निर्माण-शरीर' बहुत शुद्ध हैं; परंतु वे भी प्रकृतिसे अतीत नहीं हैं। अप्राकृत पार्षदादिके अथवा भगवान्‌के मङ्गलमय लीलासङ्गियोंके भावदेह अप्राकृत हैं और वे प्राकृत शरीरसे अत्यन्त विलक्षण हैं। पर वे भी भगवद्देहसे निम्नश्रेणीके ही हैं। भगवद्देह तो भगवत्स्वरूप तथा सर्वथा अनिर्वचनीय हैं।

भगवान् नित्य सच्चिदानन्दमय हैं, इसलिये भगवान्‌के सभी अवतार नित्य सच्चिदानन्दघन ही होते हैं। पर लीला-विकासके तारतम्यसे अवतारोंमें भेद होता है। प्रधानतया अवतारोंके चार प्रकार माने गये हैं—पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार और मन्वन्तरावतार।

पुरुषावतार

भगवान्‌ने आदिमें लोकसृष्टिकी इच्छासे महातत्त्वादि-सम्भूत षोडशकलात्मक पुरुषावतार धारण किया था। भगवान्‌का चतुर्व्यूह है—श्रीवासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। 'भगवान्' शब्द श्रीवासुदेवके लिये प्रयुक्त होता है। इन्हींको 'आदिदेव नारायण' भी कहा जाता है। पुरुषावतारके तीन भेद हैं। इनमें आद्यपुरुषावतार उपर्युक्त षोडशकलात्मक पुरुष हैं, ये ही 'श्रीसंकर्षण' हैं। इन्हींको 'कारणार्णवशायी' या 'महाविष्णु' कहते हैं। पुरुषसूक्तमें वर्णित 'सहस्रशीर्षा पुरुष' ये ही हैं। ये अशरीरी प्रथम पुरुष कारण-सृष्टि अर्थात् तत्त्वसमूहके आत्मा हैं।

आद्य पुरुषावतार भगवान् ब्रह्माण्डमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट होते हैं, वे द्वितीय पुरुषावतार 'श्रीप्रद्युम्न' हैं। ये ही 'गर्भोदकशायी'रूप हैं। इन्हीं पद्मनाभ भगवान्‌के नाभिकमलसे हिरण्यगर्भका प्रादुर्भाव होता है—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः।
नाभिहदाम्बुजादासीद् ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः॥
(श्रीमद्भा० १।३।२)

तृतीय पुरुषावतार 'श्रीअनिरुद्ध' हैं, जो प्रादेशमात्र विग्रहसे समस्त जीवोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं, प्रत्येक जीवमें अधिष्ठित हैं। ये क्षीराब्धिशायी सबके पालनकर्ता हैं।

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति॥
(श्रीमद्भा० २।२।८)

गुणावतार

गुणावतार—(सत्त्व, रज और तमकी लीलाके लिये ही प्रकट) श्रीविष्णु, श्रीब्रह्मा और श्रीरुद्र हैं। इनका आविर्भाव गर्भोदकशायी द्वितीय पुरुषावतार 'श्रीप्रद्युम्न'से होता है।

द्वितीय पुरुषावतार लीलाके लिये स्वयं ही इस विश्वकी स्थिति, पालन तथा संहारके निमित्त तीनों गुणोंको धारण करते हैं; परंतु उनके अधिष्ठाता होकर वे 'विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र' नाम ग्रहण करते हैं। वस्तुतः ये कभी गुणोंके वश नहीं होते। नित्य स्वरूपस्थित होते हुए ही त्रिविध गुणमयी लीला करते हैं।

लीलावतार

भगवान् जो अपनी मङ्गलमयी इच्छासे विविध दिव्य मङ्गल-विग्रहोंद्वारा बिना किसी प्रयासके अनेक विविध विचित्रताओं-से पूर्ण नित्य-नवीन रसमयी क्रीड़ा करते हैं, उस क्रीड़ाका नाम ही लीला है। ऐसी लीलाके लिये भगवान् जो मङ्गलविग्रह प्रकट करते हैं, उन्हें 'लीलावतार' कहा जाता है। चतुस्सनः (सनकादि चारों मुनि), नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, ध्रुवप्रिय विष्णु, ऋषभदेव, पृथु, श्रीनृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, श्रीराम, व्यासदेव, श्रीबलराम, बुद्ध और कल्कि लीलावतार हैं। इन्हें 'कल्पावतार' भी कहते हैं।

मन्वन्तरावतार

स्वायम्भुव आदि चौदह मन्वन्तरावतार माने गये हैं। प्रत्येक मन्वन्तरके कालतक प्रत्येक अवतारका लीलाकार्य होनेसे उन्हें 'मन्वन्तरावतार' कहा गया है।

शक्ति-अभिव्यक्तिके भेदसे नामभेद

भगवान्‌के सभी अवतार परिपूर्णतम हैं, किसीमें स्वरूपतः तथा तत्त्वतः न्यूनाधिकता नहीं है; तथापि शक्तिकी अभिव्यक्ति-की न्यूनाधिकताको लेकर उनके चार प्रकार माने गये हैं—'आवेश', 'प्राभव', 'वैभव' और 'परावस्थ'। उपर्युक्त

अवतारोंमें चतुस्सन, नारद, पृथु और परशुराम आवेशावतार हैं। कल्किको भी आवेशावतार कहा गया है।

'प्राभव' अवतारोंके दो भेद हैं, जिनमें एक प्रकारके अवतार तो थोड़े ही समयतक प्रकट रहते हैं—जैसे मोहिनी अवतार और 'हंसावतार' आदि, जो अपना-अपना लीलाकार्य सम्पन्न करके तुरंत अन्तर्धान हो गये। दूसरे प्रकारके प्राभव अवतारोंमें शास्त्रनिर्माता मुनियोंके सदृश चेष्टा होती है। जैसे महाभारत-पुराणादिके प्रणेता भगवान् वेदव्यास, सांख्यप्रणेता भगवान् कपिल एवं दत्तात्रेय, धन्वन्तरि और ऋषभदेव—ये सब प्राभव-अवतार हैं; इनमें अवेशावतारोंसे शक्ति-अभिव्यक्तिकी अधिकता तथा प्राभवावतारोंकी अपेक्षा न्यूनता होती है।

वैभवावतार ये हैं—कूर्म, मत्स्य, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पद्मगर्भ, बलभद्र और चतुर्दश मन्वन्तरावतार। इनमें कुछकी गणना अन्य अवतार-प्रकारोंमें भी की जाती है।

परावस्थावतार प्रधानतया तीन हैं—श्रीनृसिंह, श्रीराम और श्रीकृष्ण, ये षडैश्वर्यपरिपूर्ण हैं।

नृसिंहरामकृष्णेषु षाड्गुण्यं परिपूरितम्।
परावस्थास्तु ते साम्यं दीपादुत्पन्नदीपवत्॥

इनमें श्रीनृसिंहावतारका कार्य एक प्रह्लादरक्षण एवं हिरण्यकशिपु-वध ही है तथा इनका प्राकट्य भी अल्पकाल-स्थायी है। अतएव मुख्यतया श्रीराम और श्रीकृष्ण ही परावस्थावतार हैं।

इनमें भगवान् श्रीकृष्णको 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहा गया है। अर्थात् उपर्युक्त सनकादि लीलावतार भगवान्‌के अंश-कला—विभूतिरूप हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् स्वयं भगवान् हैं। भगवान् श्रीकृष्णको विष्णुपुराणमें 'सित-कृष्ण केश' कहकर पुरुषावतारके केशरूप अंशावतार बताया गया है। महाभारतमें कई जगह इन्हें नरके साथी नारायण ऋषिका अवतार कहा गया है, कहीं वामनावतार कहा है और कहीं भगवान् विष्णुका अवतार बतलाया है। वस्तुतः ये सभी वर्णन ठीक हैं। विभिन्न कल्पोंमें भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे अवतार भी होते हैं; परंतु इस सारस्वत कल्पमें स्वयं भगवान् अपने समस्त अंशकला-वैभवोंके साथ परिपूर्णरूपसे प्रकट हुए हैं। अतएव इनमें सभीका समावेश है। ब्रह्माजीने स्वयं इस पूर्णताको अपने दिव्य नेत्रोंसे देखा था। सृष्टिमें प्राकृत-अप्राकृत जो कुछ भी तत्त्व हैं, श्रीकृष्ण सभीके मूल तथा आत्मा हैं। वे समस्त जीवोंके, समस्त देवताओंके, समस्त ईश्वरोंके, समस्त अवतारोंके एकमात्र कारण, आश्रय और स्वरूप हैं। सित-कृष्ण-केशावतार, नारायणावतार, पुरुषावतार—सभी इनके अन्तर्गत हैं। वे क्या नहीं हैं? वे सबके सब कुछ हैं, वे ही सब कुछ हैं। समस्त पुरुष, अंश-कला, विभूति, लीला-शक्ति आदि अवतार उन्हींमें अधिष्ठित हैं। इसीसे वे स्वयं भगवान् हैं—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

लोचन मीन, लसैं पग कूरम, कोल धराधर की छवि छाजैं।
ये बलि मोहन साँवरे राम हैं दुर्जन राजन को हनि काजैं॥
हैं बल मैं बल, ध्यान मैं बुद्ध, लखें कल्की बिपदा सब भाजैं।
मध्य नृसिंह हैं, कान्ह जू मैं सिगरे अवतारन के गुन राजैं॥

किन्हीं महानुभावोंने तीन तत्त्व माने हैं—'विष्णु', 'महाविष्णु' और 'महेश्वर'। भगवान् श्रीकृष्णमें इन तीनोंका समावेश है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णखण्ड)में आया है कि पृथ्वी भाराक्रान्त होकर ब्रह्माजीके शरण जाती है। ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर महेश्वर श्रीकृष्णके गोलोकधाममें पहुँचते हैं। नारायण ऋषि भी उनके साथ रहते हैं। ब्रह्मा तथा देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्ण अवतार ग्रहण करना स्वीकार करते हैं। तब अवतारका आयोजन होने लगता है। अकस्मात् एक मणि-रत्न-खचित अपूर्व सुन्दर रथ दिखायी पड़ता है। उस रथपर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए महाविष्णु विराजित हैं। वे नारायण रथसे उतरकर महेश्वर श्रीकृष्णके शरीरमें विलीन हो जाते हैं—गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे।

परंतु महाविष्णुके विलीन होनेपर भी श्रीकृष्णावतारका स्वरूप पूर्णतया नहीं बना, तब एक दूसरे स्वर्णरथपर आरूढ़ पृथ्वीपति श्रीविष्णु वहाँ दिखायी दिये और वे भी श्रीराधिकेश्वर श्रीकृष्णके शरीरमें विलीन हो गये—स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेश्वरविग्रहे।

अब अवतारके लिये पार्थिव मानुषी तत्त्वकी आवश्यकता हुई। नारायण ऋषि वहाँ थे ही, वे भी उन्हींमें विलीन हो गये। और यों महाविष्णु-विष्णु-नारायणरूप स्वयं महेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया तथा नारायणके साथी नरऋषि अर्जुनरूपसे अवतारलीलामें सहायतार्थ अवतरित हुए।

श्रीमद्भागवतके अनुसार असुररूप दुष्ट राजाओंके भारसे

आक्रान्त दुःखिनी पृथ्वी गोरूप धारण करके करुण-क्रन्दन करती हुई ब्रह्माजीके पास जाती है और ब्रह्माजी भगवान् शंकर तथा अन्यान्य देवताओंको साथ लेकर क्षीरसागरपर पहुँचते हैं और क्षीराब्धिशायी पुरुषरूप भगवान्‌का स्तवन करते हैं। ये क्षीरोदशायी पुरुष ही व्यष्टि पृथ्वीके राजा हैं, अतएव पृथ्वी अपना दुःख इन्हींको सुनाया करती है। ब्रह्मादि देवताओंके स्तवन करनेपर ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो जाते हैं और उन समाधिस्थ ब्रह्माजीको क्षीराब्धिशायी भगवान्‌की आकाशवाणी सुनायी देती है। तदनन्तर वे देवताओंसे कहते हैं—

गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-
विंधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥
पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि ॥
वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥
(श्रीमद्भा० १० । १ । २१–२३)

'देवताओ ! मैंने भगवान्‌की आकाशवाणी सुनी है, उसे तुमलोग मेरे द्वारा सुनो और फिर बिना विलम्ब इसीके अनुसार करो । हमलोगोंकी प्रार्थनाके पूर्व ही भगवान् पृथ्वीके संतापको जान चुके हैं। वे ईश्वरोंके भी ईश्वर अपनी कालशक्तिके द्वारा धराका भार हरण करनेके लिये जबतक पृथ्वीपर लीला करें, तबतक तुमलोग भी यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें योग दो। वे परम पुरुष भगवान् स्वयं वसुदेवजीके घरमें प्रकट होंगे। उनकी तथा उनकी प्रियतमा (श्रीराधाजी) की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ भी वहाँ जन्म धारण करें।'

क्षीरोदशायी भगवान्‌के इस कथनका भी यही अभिप्राय है कि 'साक्षात् परम पुरुष स्वयं भगवान् प्रकट होंगे, वे क्षीराब्धिशायी नहीं।' अतएव स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् ही, जिनके अंशावतार नारायण हैं, वसुदेवजीके घर प्रकट हुए थे। देवकीजीकी स्तुतिसे भी यही सिद्ध है—

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः।
भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥
(१० । ८५ । ३१)

'हे आद्य ! जिस आपके अंश (पुरुषावतार) का अंश (प्रकृति) है, उसके भी अंश (सत्त्वादि गुण) के भाग (लेशमात्र)से इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हुआ करते हैं, विश्वात्मन् ! आज मैं उन्हीं आपके शरण हो रही हूँ।'

अब रही 'सित-कृष्ण-केश' की बात, सो यों कहा गया है कि इसका प्रयोग भगवान्‌के श्वेत या श्यामवर्णकी शोभाके लिये किया गया है। श्रीबलरामजीका वर्ण उज्ज्वल है और श्रीकृष्णका नीलश्याम । श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध भक्तप्रेमी वैष्णव टीकाकार श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने इसका बड़ा विलक्षण अर्थ किया है—**सितो रुद्रः कृष्णो विष्णुः, को ब्रह्मा तेषामपीश्वरः** अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके अधीश्वर। श्रीरूपगोस्वामी कहते हैं—

कलया चातुर्येण सिता निबद्धाः कृष्णा अतिश्यामाः केशा येन इति रसिकशिखावतंसस्य व्यञ्जनात् कृष्णत्वं प्राप्यते।

अर्थात् कलाचातुरीसे बाँधे हुए श्यामकेशवाले श्रीकृष्ण। एक दूसरा अर्थ यह है—

यः सितकृष्णकेशः क्षीराब्धिशयः सोऽपि यत्कलयैव भवति स कृष्णो जातः सन् कर्माणि करिष्यति।

अर्थात् 'जो सितकृष्णकेश क्षीराब्धिशायी हैं—वे भी जिस कृष्णकी कला हैं। ऐसे ही और भी अर्थ किये गये हैं। पर यही मानना चाहिये कि स्वयं भगवान् परिपूर्णतम श्रीकृष्णमें श्रीकृष्णावतारके भी सभी अवतार-कारणोंका एकत्र समावेश है। एकमें ही और एकसे ही सबका कार्य सुसम्पन्न हो जाता है।

सबसे बड़ा प्रमाण तो है—गीतामें कहे हुए भगवान् श्रीकृष्णके अपने वाक्य, जो उनके परिपूर्णतम, सबके आदि, स्वयं भगवान् होनेकी घोषणा करते हैं। उनमेंसे कुछ थोड़े से यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
(१५ । १६)

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥
(१५ । १७)

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
(१५। १८)

''समस्त भूत 'क्षर' हैं और कूटस्थ 'अक्षर' है; इन दोनोंसे पृथक् एक 'उत्तम पुरुष' हैं जिन्हें अविनाशी परमात्मा कहते हैं, जो ईश्वर हैं और त्रिलोकीमें व्याप्त रहकर सबका धारण-पोषण करते हैं। मैं 'क्षर'से अतीत हूँ, और 'अक्षर' (कूटस्थ) से भी उत्तम हूँ; इसीलिये लोक और वेदमें मेरा 'पुरुषोत्तम' नाम प्रसिद्ध है।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(१४। २७)

'मैं अविनाशी ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हूँ तथा अमृत, शाश्वतधर्म और ऐकान्तिक सुखकी भी प्रतिष्ठा हूँ। अर्थात् ब्रह्म, अमृत, शाश्वतधर्म, ऐकान्तिक सुख—सबका आधार मैं ही हूँ।'

गीतामें और भी बहुत-से वचन हैं, जो भगवान् श्रीकृष्ण-को पूर्णतम स्वयं भगवान् सिद्ध करते हैं। यों श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् तो हैं ही। साथ ही वे अनन्त विभूति और शक्तिसे सम्पन्न सर्वाङ्गपूर्ण योगेश्वरेश्वर, सर्वकलाकुशल ऐतिहासिक महापुरुष भी हैं। उनकी सभी लीलाएँ महामानवके आदर्शको उपस्थित करती हैं। श्रीभागवत तथा महाभारत तो उनके महत्त्वपूर्ण लीलाचरित्र तथा तत्त्वव्याख्यानसे भरे ही हैं, विभिन्न पुराणोंमें भी उनकी लीलाका बड़ा सुन्दर वर्णन है। वे परम सुन्दर, परम मधुर, परम कोमल होनेके साथ ही महा-कालरूप अत्यन्त विकट और महान् कठोर हैं। उनकी लीलामें सर्वत्र 'षडैश्वर्यपूर्णता' के साथ-साथ 'विरुद्ध-धर्माश्रयता' के नित्य दर्शन होते हैं।

श्रीकृष्णका रूप-सौन्दर्य

उनका वह द्विभुज रूप कितना सुन्दर तथा मधुर है, इसे कोई बता नहीं सकता। एक महात्माने कहा है कि श्रीकृष्ण-के इस मायातीत या गुणातीत नित्यरूपका वर्णन करनेकी शक्ति चौदह भुवनोंमें किसीमें भी है, ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता। शास्त्रोंमें जो वर्णन है, वह तो ध्यानकी सुकरताके लिये उनके रूपका आभासमात्र है। कर्दम ऋषिने जो रूप देखा था, वह चतुर्भुज था। ध्रुव, अर्जुन तथा अन्यान्य भक्तोंने भी उस रूपके दर्शन किये थे। यद्यपि ये सभी रूप एक-से नहीं थे, तथापि थे एक ही। परंतु ये उनकी ऐश्वर्यभूमिके रूप हैं। माधुर्यमण्डलमें उसका द्विभुज रूप ही प्रकट होता है, वह स्वजनमोहन ही नहीं, स्वमनमोहन भी है। वह नित्य नव-किशोर नटवर विग्रह है। गोपवेश है। हाथमें मधुर मुरली लिये कदम्बके नीचे विराजित है। श्याममेघके सदृश नीलाभ श्यामवर्ण है। पीतवसन पहने है; गलेमें गुंजाहार और वन-माला सुशोभित हैं, वदनपर नित्य मधुर मोहन स्मित हास्य है। चारों ओर गोपबालक तथा गोपदेवियाँ घेरे हैं। किसकी क्षमता है जो इस अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यको भाषाके द्वारा प्रकाश कर सके।

व्रजमें प्रकट भगवान्‌के स्वरूप-सौन्दर्यपर उनकी वात्सल्यमयी माता तथा मातृस्थानीया गोपमाताएँ, उनकी परम प्रेयसी गोपरमणियाँ और उनके सब प्रकारके सखा-गण तो अपने-अपने भावानुसार मुग्ध थे ही—उनकी मुग्धताके तो असंख्य उदाहरण हैं; संसारमें कोई भी प्राणी ऐसा नहीं था, जिसकी दृष्टि एक बार उनके सौन्दर्यपर पड़ी हो और वह अपनेको भूल न गया हो। नामकरण-संस्कार करानेके लिये आचार्य पधारते हैं और शिशु श्रीकृष्णके अश्रुतपूर्व दिव्य रूप-सौन्दर्यको देख विचित्र दशाको प्राप्त होकर अपने आपको भूल जाते और कहने लगते हैं—

धैर्यं धिनोति बत कम्पयते शरीरं
रोमाञ्चयत्यतिविलोपयते मतिं च।
हन्तास्य नामकरणाय समागतोऽह-
मालोपितं पुनरनेन ममैव नाम॥

'(मेरा) धैर्य छूट रहा है, शरीर कम्पित और रोमाञ्चित हो रहा है तथा बुद्धि भी लोप हुई जा रही है! आश्चर्य है! जिनके नामकरणके लिये मैं यहाँ आया, उन्होंने तो स्वयं मेरा नाम ही मिटा दिया है।' नाम-रूप मिटनेपर ही तो मुक्ति होती है। सचमुच जिस भाग्यवान्‌को उनके रूप-सौन्दर्यकी झाँकी हो जाती है, उसके लिये फिर नाम-रूपात्मक संसार कैसे रह सकता है?

लीलाशुक अपनी मधुर वाणीसे अपना अनुभव सुनाकर पथिकोंको सावधान करते हुए प्रकारान्तरसे उसी पथपर जानेके लिये प्रोत्साहित करते हैं—

मा यात पान्थाः पथि भीमरथ्या दिगम्बरः कोऽपि तमालनीलः।
विन्यस्तहस्तोऽपि नितम्बबिम्बे धूतः समाकर्षति चित्तवित्तम्॥

'अरे पथिको! उस पथसे मत जाना, वह मार्ग बड़ा भयानक है। वहाँ अपने नितम्बबिम्बपर हाथ रक्खे जो

तमाल-सदृश नीलश्याम धूर्त बालक खड़ा है, वह अपने समीप होकर जानेवाले किसी भी पथिकका चित्तरूपी धन चुराये बिना नहीं छोड़ता ।' अर्थात् श्यामसे चित्त चुरवाना हो तभी उस रास्ते जाना ।

पण्डितराज जगन्नाथ अपने चित्तसे कहते हैं—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्न कार्यस्त्वया ।
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति ॥

'अरे चित्त ! सावधान रहना । तू वृन्दावनमें गौ चरानेवाले, नवीन नील-नीरदके समान नीलश्याम कान्तिवाले किसी पुरुषको अपना बन्धु मत बना लेना । कहीं बना लिया तो वह अपनी सौन्दर्य-सुधा-वर्षिणी मन्द मुसकानसे तुझे मोहित कर लेगा, और मेरे समस्त प्रिय विषयोंको तुरंत नष्ट कर डालेगा ।' सच है, उनकी सौन्दर्य-सुधामयी मुसकानके सामने विषय-विष कैसे रह सकता है ।

महाकवि भवभूतिको एक बार श्रीश्यामसुन्दरके रूप-सौन्दर्यकी जरा-सी झाँकी हो गयी और वे सदाके लिये अपने मनको लुटा बैठे । वे कहते हैं—

शैवा वयं न खलु तत्र विचारणीयं
पञ्चाक्षरीजपपरा नितरां तथापि ।
चेतो मदीयमतसीकुसुमावभासं
स्मेराननं स्मरति गोपवधूकिशोरम् ॥

'मैं शैव हूँ; इस सम्बन्धमें तो कुछ विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं है; मैं सदा-सर्वदा 'नमः शिवाय' यह पञ्चाक्षर मन्त्र भी जपता रहता हूँ । इतना सब होते हुए भी मेरा मन तो अब निरन्तर अतसी-कुसुम-सुन्दर गोप-वधू-किशोर श्रीश्यामसुन्दरके मधुर मुसकानभरे मुखका ही स्मरण करता रहता है ।'

अद्वैतनिष्ठासम्राट्, अद्वैतसिद्धिके रचयिता श्रीमधुसूदन स्वामीने अपनी दशाका बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः ।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

अद्वैतपथसे स्वाराज्य-सिंहासनपर आरूढ़ हो जानेपर भी यह शठ गोपीवल्लभ ऐसे-ऐसे ज्ञानी महारथियोंको हठपूर्वक अपना दास बना लेता है । फिर दूसरा कोई तत्त्व उन्हें सूझता ही नहीं । इसीसे वे कह उठते हैं—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

औरोंकी तो बात ही क्या, बूढ़े व्यास एवं भीष्म-सरीखे महापुरुष तथा नारदादि ऋषि-मुनि भी उनके स्वरूप-सौन्दर्यको एकटकी लगाकर देखते ही रह जाते थे ।

सुर-मुनि, मनुज-दनुज, पशु-पंछी को अस जो जग जायौ ।
लखि कैं छबि-माधुरी लल्न की, सुधि-बुधि नहि बिसरायौ ॥
जोगी, परम तपस्वी, ज्ञानी, जिन निज-निज मन मारयौ ।
तनिक निरखि मुसक्यान मधुर तिन बरबस जीवन हारयौ ॥
बिसरयौ सहज बिराग, ब्रह्मसुख, थकित बिलोचन ठाढ़े ।
तनु पुलकित, दृग प्रीति-सलिल, द्रुत हृदै, प्रेम-रस बाढ़े ॥

× × × ×

भगवान् एक ही है

कुछ महानुभाव ऐसा मानते हैं कि लीलामें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णका त्रिविध प्रकाश है—कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्ण पूर्ण सत् और ज्ञानशक्तिप्रधान हैं, द्वारका और मथुरामें पूर्णतर चित् और क्रियाशक्तिप्रधान हैं एवं श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्ण पूर्णतम आनन्द और इच्छाशक्तिप्रधान हैं । कुछ लोग महाभारत और श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्णको द्योतक मानते हैं । यह सब उनकी अपनी भावना है । 'जिन्ह कै रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥' वस्तुतः परिपूर्णतम भगवान् एक ही हैं, उनका अनन्त लीला-विलास है और लीलानुसार उनके स्वरूप-वैचित्र्य हैं । वस्तुतत्त्व एक ही है ।

जिस किसी भी भावसे कोई उन्हें देखे—अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार उनके दर्शन करे, सब करते एक ही भगवान्के हैं । उनमें छोटा-बड़ा न मानकर अत्यन्त प्रेम-भक्तिके साथ अपने इष्ट स्वरूपकी सेवामें ही लगे रहना चाहिये* । अस्तु,

* एक सज्जन पूछते हैं कि क्या भगवान् राम भगवान् श्रीकृष्णसे किसी प्रकार न्यून हैं ? इसका उत्तर यह है कि भगवान्में न्यूनताकी कल्पना करना ही अपराध है । वे दोनों सर्वथा एक ही हैं । लीलामें एक मर्यादापुरुषोत्तम, दूसरे लीला-पुरुषोत्तम ।

आजका मङ्गल-दिवस

आज वही महान् मङ्गलमय दिवस है, जिस दिन स्वयं भगवान्‌का इस धराधामपर प्राकट्य हुआ था। हम धन्य हैं जो आज इस महामहोत्सवका सौभाग्य प्राप्तकर मानव-जीवनको सफल बना रहे हैं।

भगवान् प्रकट हुए मथुराके कंस-कारागारमें—यद्यपि कुछ भक्त उनका गोकुलमें प्रकट होना भी मानते हैं। जो कुछ भी हो, उनके प्राकट्यके उत्सव मनानेका सौभाग्य मिला श्रीनन्द-यशोदाको और व्रजवासियोंको ही। अतः हम भी उन्हींके साथ उत्सवमें सम्मिलित होकर, ग्वाल-बाल तथा नन्द-बाबाके साथ मिलकर नाचते गाते हैं—

हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायौ, घर घर होति बधाई॥
द्वारें भीर गोप गोपिनि की, महिमा बरनि न जाई।
अति आनंद होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाई॥
नाचत वृद्ध तरुन अरु बालक, गोरस कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुख सागर सुंदर स्याम कन्हाई॥

× × × ×

नन्द के आनंद भयो, जै कन्हैयालालकी!

भगवान्‌का प्रेम और शक्ति सदा मेरे साथ हैं

मैं जीवनकी किसी भी परिस्थितिसे भयभीत या परास्त नहीं होता; क्योंकि मेरे हृदयमें स्थित भगवान् मेरी सफलताके हेतु हैं। भगवान्‌के लिये कोई भी स्थिति ऐसी पेचीदा अथवा कठिन नहीं है, जिसको वे सुलझा न सकें अथवा जिसका सर्वानुकूल समाधान वे न कर सकें। अतएव अपने मनको क्षुब्ध करनेवाली प्रत्येक पेचीदा या कठिन परिस्थितिको सर्वसमाधानविधायक भगवान्‌को सौंपकर मैं निश्चिन्त होता हूँ।

जब मैं अस्वस्थ होता हूँ, तब न तो मैं अपनी अस्वस्थताके विषयमें कुछ सोचता हूँ और न दूसरोंसे उसके सम्बन्धमें कुछ कहता-सुनता हूँ; प्रत्युत अपने हृदयमें इस विश्वासको दृढ़ करता हूँ कि सर्वरोग-शामक भगवान् मेरे अन्तरमें अवस्थित हैं। जब कोई भय मुझे भयभीत करता है तो मैं अपने हृदयमें बार-बार इस विश्वासको दोहराता हूँ कि भगवान् संरक्षक एवं साहसके रूपमें नित्य मेरे साथ हैं। जब मन किसी भावी काल्पनिक अथवा वास्तविक विपत्तिकी आशङ्कासे भयभीत एवं अस्थिर होने लगता है, तब मैं इस विश्वासको परिपुष्ट करता हूँ कि जो भगवान् इस समय मेरे साथ हैं, वे ही भविष्यमें भी मेरे साथ रहेंगे।

सामने उपस्थित कठिनाइयोंको—चाहे वे कितनी ही भीषण एवं पेचीदा क्यों न हों—मैं विश्वास-पूर्वक भगवान्‌के प्रेमपूर्ण और सौहार्दभरे संरक्षणमें सौंपता जाता हूँ और एक क्षणके लिये भी इस बातमें संदेह नहीं करता कि भगवान्‌का प्यार सब परिस्थितियोंका सुन्दर-से-सुन्दर रूपमें समाधान कर रहा है।

मैं भगवान्‌के प्रेम एवं शक्तिके बलपर किसी भी परिस्थितिका स्थिरतासे सामना करनेमें समर्थ हूँ।

भगवान्‌का प्रेम और शक्ति सदा मेरे साथ हैं।

दोनों ही षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् हैं। जैसे श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णके लिये 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' आया है, वैसे ही महारामायणमें भगवान् श्रीरामके लिये 'रामस्तु भगवान् स्वयम्' आया है। अतएव इनमें छोटे-बड़ेकी कल्पना नहीं करनी चाहिये।

गायत्री माताकी भक्तिका विलक्षण फल

[एक विश्वविख्यात आर्य-संन्यासीकी जबानी अपनी बीती सत्य कहानी]

(बिल्कुल सत्य घटना)

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

अभी पिछले दिनोंकी बात है कि पिलखुवामें हमारे स्थानपर विश्वविख्यात आर्यसमाजी संन्यासी श्रीस्वामी आनन्द-स्वामी सरस्वतीजी महाराज (भूतपूर्व महाशय खुशालचंदजी, सम्पादक 'मिलाप') पधारे थे। उनके कई दिनोंतक सदुपदेश हुए थे, जिन्हें सुनकर जनता बड़ी प्रभावित हुई थी। आपने अपने जीवनमें श्रीगायत्री माताकी भक्तिका क्या चमत्कार देखा तथा मृत्युञ्जय मन्त्रका भी—इस विषयमें उन्होंने कुछ सत्य घटनाएँ सुनायीं। उन्हें हम ज्यों-की-त्यों यहाँ दे रहे हैं। आशा है, पाठक ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे।

एक विद्यार्थी—महाराजजी! हमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—बेटा! तुम्हें चाहिये गायत्री माताकी शरण लेनी। बस, तुम गायत्री माताकी भक्तिसे सब कुछ पा सकते हो। हाँ, यह आवश्यक है कि गायत्री-जपके साथ इस मन्त्रके आदेशको अपने जीवनमें ओतप्रोत कर लो। तब मन्त्र-जप पूरा लाभ देता है।

विद्यार्थी—महाराजजी! हम गायत्री तो जपना चाहते हैं; परंतु कुछ लोग कहते हैं कि तुम गायत्री तब जप सकते हो, जब तुम्हारे यज्ञोपवीत—जनेऊ हो; नहीं तो बिना यज्ञोपवीतके गायत्री जपनेसे पाप लगता है। तो हमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—तुम्हें चाहिये कि तुम अपना यज्ञोपवीत-संस्कार कराओ और संस्कार कराकर तब गायत्रीका जप करो। इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है? हिंदू होकर यज्ञोपवीत-संस्कार न कराना यह तो बड़ी लज्जाकी बात है।

विद्यार्थी—नहीं महाराजजी! कोई यदि यज्ञोपवीत-संस्कार नहीं कराना चाहता हो तो क्या करे?

स्वामीजी—जिसे भगवान् श्रीराम-कृष्णकी सोसायटीमें शामिल होना है, उसे तो अपना यज्ञोपवीत-संस्कार अवश्य कराना ही होगा और यदि अपना उत्थान चाहते हो तो गायत्री माताकी शरण लो, गायत्री माताको भक्ति करो और नित्यप्रति गायत्री माताकी गोदमें बैठकर अमृतपान करो।

प्रश्न—आपने स्वयं गायत्री-माताकी भक्तिके द्वारा कुछ चमत्कार देखा है? क्या वास्तवमें मन्त्र-जपसे कार्य सिद्ध हो सकते हैं?

स्वामीजी—देखा है और खूब देखा है। गायत्री मातामें और महामृत्युञ्जयके जपमें बड़ी विलक्षण शक्ति देखी है। यह मन्त्र बड़ी-से-बड़ी घोर विपत्तियोंसे छुटकारा दिला देता है और फाँसीके तख्तेपरसे भी बचा देता है। हमने इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अपनी आँखोंसे देखा है। मेरे पुत्र रणवीर, सम्पादक 'मिलाप'को एक बार सेशनकोर्टसे फाँसीकी सजाका आदेश हो गया। मैं रणवीरसे जेलमें मिला और उससे कहा कि तुम माता गायत्रीकी शरण लो और तुम सवा लाख—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

—इस महामृत्युञ्जय-मन्त्रका जप करो। तुम अवश्य ही फाँसीकी सजासे छूट जाओगे। इधर फाँसीकी कोठरीमें तुम मन्त्र-जप करो, उधर हम तुम्हें मृत्युके पंजेसे बचानेके लिये पूरा पुरुषार्थ करेंगे। प्रभुकी आराधना और तदनुकूल प्रयत्न-दोनों मिलकर कार्य सिद्ध कर देते हैं। उसने मेरे कहनेके अनुसार इस मन्त्रका जप करना प्रारम्भ किया। बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टर यह कहते थे कि 'ये छूटेंगे नहीं'; किंतु मैं यही कहता था कि हमने यहाँकी अदालतके अतिरिक्त एक बहुत बड़ी अदालतमें, जो सबसे बड़ी अदालत है, अपील कर रक्खी है। उसमें हमारी अवश्य ही सुनवायी होगी। जिस दिन सवा लाख जप पूरा हुआ, ठीक उसी दिन रणवीर साफ छूट गये। इस प्रकार मन्त्रने फाँसीकी सजासे रक्षा की। जो मन्त्र फाँसीकी सजासे बचा सकता है, वह मन्त्र क्या रोगको नहीं मिटा सकता? या कोई वस्तु प्राप्त नहीं करा सकता। विश्वास और श्रद्धाके साथ जप करना चाहिये। सब कुछ प्राप्त हो सकता है और रोग, शोक सब जा सकता है।

प्रश्न—अपने जीवनकी कोई सत्य घटना सुनाइये।

स्वामीजी—सुनिये, सुनाये देता हूँ।

गायत्री माताकी बड़ी अद्भुत अलौकिक शक्ति है। गायत्री माताकी भक्ति करनेसे, गायत्री माताके शरण जानेसे हमारे लोक-परलोक दोनों ही बन जाते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। गायत्री माताके जपसे, भक्तिसे क्या प्राप्त होता है, इसका मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। इस सम्बन्धका मेरा निजी अनुभव इस प्रकार है—

बाल्यकालमें मेरी बुद्धि सूक्ष्म नहीं थी। मैं उस समय एक स्कूलमें पढ़ा करता था; परंतु मुझे उस समय आता कुछ भी नहीं था। मैं स्कूलके प्रत्येक घंटेमें मार ही खाता था। अथवा मुझे बेंचपर खड़े होकर स्कूलका समय व्यतीत करना पड़ता था। स्कूलमें मुझसे जाते ही पाठ याद न होनेके कारण खूब कहा-सुना जाता था और मैं खड़ा हो जाता था। और उधर जब मैं अपने घर पहुँचता था तो घरपर मुझे मेरे पिताजी बड़ी बुरी तरहसे धिक्कारते थे तथा मुझे डाँटते हुए कहते थे कि तू इस प्रकार अपना जीवन नष्ट कर लेगा। पढ़ता क्यों नहीं है? स्कूलसे भी और घरसे भी अपमानित हुआ मैं आत्महत्या करनेकी बात सोचा करता था। एक दिनकी बात है—वर्षाऋतुमें जब हमारे ग्रामकी बरसाती नदी खूब वेगसे बह रही थी, मैंने उसके पुलपर चढ़कर आत्महत्या करनेकी दृष्टिसे नदीमें छलाँग लगा दी; परंतु मैं मर न सका और जलमें बहता हुआ किनारे जा लगा। ग्रामके लोगोंने मुझे पहचान लिया और ले जाकर मेरे घर पहुँचा दिया। इस प्रकार मेरी बड़ी बुरी अवस्था थी। परंतु जब मेरे भाग्यके उदय होनेका समय आया, तब अकस्मात् विचरते-विचरते हमारी नगरीमें एक बड़े ही उच्चकोटिके संत—स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी महाराज पधारे और हमारी ही वाटिकामें आकर ठहरे तथा वहींपर उन्होंने निवास किया। पिताजीने उन्हें भोजन ले जानेका कार्य मुझे सौंपा। मैं प्रतिदिन स्वामीजी महाराजके लिये भोजन ले जाता। एक दिनकी बात है, मैं उस दिन पाठ याद न होनेके कारण स्कूलमें तथा घरमें बड़ी बुरी तरहसे पिटा था और रोते-रोते मेरी आँखें भी सूज गयी थीं। दोपहरके समय मैं उस दिन भी नित्यकी भाँति स्वामी नित्यानन्दजी महाराजके लिये भोजन ले गया और भोजनकी थाली स्वामीजी महाराजके सामने रखकर आप दीवारके साथ लगकर उदास खड़ा हो गया। स्वामीजी महाराज भोजन भी करते जाते थे और बार-बार वे मेरी ओर ताकते भी जाते थे। भोजन करनेके पश्चात् स्वामीजीने मुझे नाम लेकर पुकारा और मुझसे पूछा कि 'कहो, क्या बात है? आज तुम बड़े ही उदास क्यों खड़े हो?' मैंने कहा—'महाराज! कुछ नहीं है।' स्वामीजी कहने लगे—'नहीं, बात तो कुछ अवश्य है। बताओ, क्या बात है? और तुम्हारी आँखें भी आज रुदनसे कुछ सूजी हुई-सी प्रतीत होती हैं।' यह सुनते ही मेरे धैर्यका बाँध टूट गया और मैं अब तो फूट-फूटकर रोने लगा। तब स्वामीजी महाराजने बड़े प्यारसे मुझे अपने बिल्कुल ही पासमें बिठलाकर कहा—'कहो बेटा, तुम्हें क्या कष्ट है, जो तुम इस प्रकार रो रहे हो?' तब मैंने निवेदन किया कि 'महाराजजी! मैं अब जीवित रहना नहीं चाहता; क्योंकि मैं बुद्धि मोटी होनेके कारण हर स्थानपर अपमानित होता हूँ, इसलिये मुझे अब मरनेका कोई सरल—सीधा-सा साधन बताइये।' स्वामीजी सुनकर कहने लगे—'अरे, तू इतनी-सी बातसे अधीर हो गया है! तेरे रोगकी औषध हमारे पास है, अब तू चिन्ता मत कर।'

मैंने अब तो आशाभरी नेत्रोंसे उन्हें देखते हुए उनसे कहा कि 'मुझे वही बतलाइये।' स्वामीजी सुनकर कहने लगे कि 'एक सफेद कागज लाओ।' मैंने सफेद कागज दिया। उन्होंने कागजपर गायत्री-मन्त्र लिखकर मुझे आदेश किया कि 'यह है तुम्हारे रोगका इलाज। प्रातःकाल जब घरके सब लोग सोये पड़े हों, तब तू उठकर और शुद्ध—पवित्र होकर और पवित्र कुशासनपर बैठकर और एक आसनसे बैठकर भ्रूकुटीमें ध्यान लगाकर इस मन्त्रका जप किया कर।' यह कहकर स्वामीजीने मुझे आशीर्वाद दिया।

इस मन्त्रको लेकर मुझे ऐसा लगा कि जैसे मुझे कोई एक बहुत बड़ी सम्पत्ति मिल गयी हो। अब तो मैं पूज्य स्वामीजी महाराजके आज्ञानुसार प्रातःकाल साढ़े तीन बजे उठ जाता और स्नान आदिके पश्चात् एक आसनपर बैठकर ध्यान जमाकर गायत्रीका जप करता। परंतु बाल्यावस्थाके कारण निद्रा आकर घेर लेती और मैं ऊँघने लगता। जब मैं निद्रा दूर होते न देखता तो मैं अपने नेत्रोंपर पानीके छींटे देता और इस प्रकारसे सावधान होकर फिरसे गायत्रीका जप करना प्रारम्भ कर देता; परंतु निद्रा फिर भी मुझे आ घेरती। इससे बचनेका मुझे एक उपाय सूझा। मेरी चोटी बड़ी लंबी थी। मैंने एक लंबी रस्सी लेकर उस रस्सीका एक सिरा तो छतमें लगे कुंडेमें बाँध दिया और रस्सीका दूसरा सिरा चोटीके साथ बाँधकर बैठ गया। जप करते समय जब मुझे ऊँघ आती और सिर नीचे होता तो चोटीके खिंच जानेसे मैं एकदम सावधान हो जाता। इस प्रकार बड़ी

श्रद्धा-भक्तिसे मैं गायत्रीका निरन्तर जप करने लगा। चार-पाँच मासके पश्चात् ही मैंने गायत्री माताके जपका यह अद्भुत चमत्कार देखा कि जहाँ पहले मेरी बुद्धि कोई भी विषय नहीं पकड़ती थी, वहाँ कुछ-कुछ गणित, इंगलिश, हिंदी, इतिहास इत्यादि स्मरण होने लगे। और जब वार्षिक परीक्षा हुई तब मैं उसमें अच्छे नंबरसे उत्तीर्ण हो गया। मास्टर लोग मुझे उत्तीर्ण होते देखकर आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे कि 'इसे तो कुछ भी नहीं आता था, फिर यह पास कैसे हो गया ? हो-न-हो इसने दूसरेकी नकल की होगी।' मैंने कहा कि 'ऐसी बात तो नहीं है।' उसके पश्चात् जो भी परीक्षा होती, मैं उसीमें अब तो अच्छे नंबरों-से उत्तीर्ण होता रहा और गायत्री माताकी कृपासे मेरी बुद्धि दिनोंदिन निर्मल और तीव्र होने लगी और जब कर्तव्य-क्षेत्रमें लगा, तब भी निरन्तर उन्नति ही करता चला गया। गायत्री माताकी कृपासे वैभवकी सारी वस्तुएँ प्राप्त होने लगीं। गाय, भैंस, कारें, मोटरें, कोठो, पुत्र-पौत्र—जितनी भी लौकिक वैभवकी चीजें हैं, सभी प्राप्त होने लगीं। इन सारे ही लौकिक वैभवोंको प्राप्त करनेके पश्चात् यह शक्ति भी गायत्री माताकी कृपासे प्राप्त हुई कि मैं इन सबपर लात मारकर विरक्त हो गया और आत्मदर्शनका यत्न करने लगा। अब मेरी आयु ७५ वर्षकी हो चुकी है और ९ वर्षकी आयुसे लेकर अबतक मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है, वह सब श्रीगायत्री माताकी ही कृपासे प्राप्त हुआ है। मुझे भी कोई ऐसी रात्रि या दिन स्मरण नहीं कि जब मैंने सारे लंबे वर्षोंमें कभी श्रीगायत्री माताकी गोदमें बैठकर अमृत न पिया हो। मेरा अनुभव यह है कि गायत्री माताकी आराधनासे लोक-परलोक दोनों ही सुधर जाते हैं। अथर्ववेदके अंदर भी यही आदेश है कि गायत्री माताके साधकको आयु, स्वास्थ्य, संतान, धन, ऐश्वर्य, कीर्ति, पशु, ब्रह्मवर्चस्—दुनियाके ये सब-के-सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और तब ब्रह्मलोक भी प्राप्त हो जाता है। कौन-सी ऐसी चीज है, जो गायत्री माताकी कृपासे प्राप्त नहीं हो जाती ? इसलिये गायत्री माताका भरोसा और गायत्री माताकी भक्ति अवश्य ही करनी चाहिये।

मुझे गायत्री माताने घोर विपत्तिसे कैसे बचाया ! इतना ही क्यों, मैं जो आज आपके सामने दिखलायी दे रहा हूँ और जो मैं आज आपके सामने जीवित हूँ, यह भी एकमात्र गायत्री माताकी कृपासे ही है, और किसी कारणसे नहीं। मैं कैलासकी यात्रामें था, जो बड़ी भयंकर यात्रा है, जिसमें मेरे पैरकी हड्डी टूट गयी थी और मेरे सभी साथियोंने मेरा साथ छोड़ दिया था तथा वे मुझे अकेला छोड़कर आगे चले गये थे। मैंने उस समय अपनी गायत्री मातासे प्रार्थना की कि 'मेरी माता ! तू मेरी रक्षा कर।' मैंने देखा कि गायत्री माताने मेरी प्रार्थना सुनी और मेरे अंदर ऐसी शक्ति पैदा की कि मैं जो गायत्रीका स्मरणकर चलनेको खड़ा हुआ तो एकदम टूटी हड्डीका पता नहीं क्या हुआ और मैं पहाड़ोंको लाँघकर यहाँ आ पहुँचा। यह मैंने स्वयं अपने जीवनमें गायत्रीका अद्भुत चमत्कार देखा है। गायत्री माताकी भक्तिसे मैंने सब कुछ प्राप्त किया है। और भी जो कोई गायत्री माताकी भक्ति करेगा, उसे भी सब कुछ प्राप्त होगा—ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। परंतु गायत्री-जप यम-नियमोंका पालन करते हुए और मन्त्रके आदेशको जीवनमें ढालते हुए ही करना लाभदायक है। बोलो गायत्री माताकी जय !

एक ब्रजवासी साधकका अनुभव

आज प्रातःकाल मैं यमुना-स्नान करने गया था। श्रीश्यामसुन्दरकी मधुर स्मृतिमें मन डूबा जा रहा था। हरेक डुबकीमें श्रीकृष्ण हृदयमें समा रहे थे। ऐसा ही प्रतीत हो रहा था, मानो मैं अकेला नहीं नहा रहा हूँ, मेरे साथ मेरे प्राणधन श्रीश्यामसुन्दर भी हृदयसे लग रहे हैं। मुझे तो जितनी मोहन मादकता कालिन्दी-सलिलमें दीखती है, उतनी श्रीगङ्गाजीमें नहीं दीखती; क्योंकि यमुनाके नीलश्याम जलको देखकर श्यामघन श्रीश्यामसुन्दरकी परम सुखद स्मृतिसे हृदय भर जाता है। हृदयमें उनकी संनिधिका अनुभव होता है। इससे यमुनाका नील-घनश्याम जल मुझे बड़ा ही अच्छा लगता है।

निषादराज गुह और केवट एक व्यक्ति हैं अथवा दो ?

(लेखक—सम्मान्य पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस')

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख शृङ्गवेरपुरपर गङ्गापार करनेके लिये प्रथम आता है निषादराज गुह और विनम्रतापूर्वक सेवामें निरत हो जाता है। उसके साथ उसकी जातिके लोग आते हैं; पर कोई विशेषरूपसे श्रीरामचन्द्रके साथ अपनेको परिचित नहीं कराते। सब गुहके सहगामी रहते हैं। तब विचार करनेका स्थल है कि गुहके अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति केवट नामसे गङ्गा-पार करनेके पूर्व आता है और धृष्टतापूर्वक कहता है कि पाँव धो लेनेके पश्चात् नावपर चढ़ने दूँगा। ऐसा व्यक्ति दूसरा कौन है, कहीं उसका उल्लेख नहीं किया गया। दूसरी ओर यदि 'केवट' शब्दसे ही वह अन्य व्यक्ति माना जाता है तो 'केवट' शब्द तो गुहके लिये अनेक स्थलोंपर आया है; फिर 'केवट' शब्द व्यक्तिवाचक है भी नहीं, वह तो गुण-वाचक नाव चलानेवालेका बोधक है।

अब प्रश्न होता है कि 'क्या निषादराज गुहने नावको चलाया था ?' उत्तर है कि उसने रामकी सेवासम्बन्धी सभी कार्य किये थे। दूसरे किसीको उसने कार्यमें नहीं लगाया था; जैसे—

यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥
करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें ॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥
देव ! धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा ॥

गुहने श्रीरामजीके सम्मुख अपनेको नीच बताया था, उसमें निषादराज होनेका अभिमान नहीं था और वही स्वयं फल-मूलादि लेकर सेवामें उपस्थित हुआ था।

आगे चलकर वह किसी अन्य निषादको श्रीरामकी सेवामें नहीं लगाता है, स्वयं सेवामें तत्पर रहता है। जैसे—

तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना ॥
लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥

विश्राम-स्थान निश्चय हो जानेके पश्चात् गुहने स्वयं श्रीसीताराम तथा लक्ष्मणजीके लिये चटाई बनायी। यहाँपर भी किसी अन्य निषादको काममें नहीं लगाया। वरं जो पहले उसके साथ लोग आये थे, वे सब लौट गये थे। जैसे—

पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए ॥
गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई ॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी ॥

चटाई बनानेके अतिरिक्त फल-कन्द-मूलादि भी गुह ही लाया और उन्हें दोनोंमें भरकर उसने स्वयं रखा।

शयन-कालमें पहरुओंको दूर चारों दिशाओंमें नियत कर दिया और निकट रक्षण-सेवामें स्वयं रात्रिभर जागता रहा।

आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू ॥

यहाँतक तो उसने किसी अन्यको श्रीरामजीकी सेवामें नियत नहीं किया, जिससे वह व्यक्ति ढीठ होकर साहस करनेमें समर्थ होता। गुह देश-कालका ज्ञाता तथा श्रीरामचन्द्र-जीके ऐश्वर्यसे परिचित था और प्रभुका प्रभाव उसपर पूर्णरूपसे था। इसके अतिरिक्त वह श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी था, उसके प्रयाणमें रामचन्द्रजीने उसे 'सखा' शब्दसे सम्बोधन किया था।

प्रातःकाल श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीताजी तथा लक्ष्मणजीके साथ गङ्गातटपर आ गये थे, पार जानेके लिये नावकी प्रतीक्षा की जा रही थी; परंतु गुह नावको किनारे नहीं ला रहा था। यदि कहा जाय कि नावको चलानेवाला कोई अन्य केवट था, जिसकी जीविका नाव चलानेकी थी तो वह भी गुहके अधीन ही था, गुहकी आज्ञाके अनुकूल कार्य करता था। यदि अल्पकालके लिये यह भी मान लिया जाय कि गुहके संकेत-पर नाव नहीं लायी गयी तो इससे गुह ही सम्मुख आता है, अन्य केवट उसके आज्ञाकारी रूपमें दृष्टि आते हैं। यदि इसका हठ किया जाय कि केवट दूसरा व्यक्ति था तो साधारण, अपरिचित, नीचजाति, परिमितज्ञान, गूलरकीट-सदृश, मत्स्यजीवी, दरिद्राकुल, स्वकुटुम्ब-सीमा-सीमित-स्नेह, केवल केवट-जाति जन एक केवटमें यह साहस कहाँ हो सकता था कि जिनके लिये उसके राजा स्वयं सहज सेवामें तत्पर थे, उनके सम्मुख वह कहे कि 'आपका मर्म मैं जानता हूँ।' इतना उद्धतपना कि अपने राजाका भी खयाल न करके श्रीरामजीके सम्मुख यह कहनेका साहस करे कि 'आपकी पगधूल प्रभावशालिनी है, उसने पत्थरसे अहल्याको सुन्दर स्त्री बना दिया था। मेरी नाव भी कहीं स्त्री न हो जाय।'

अपरिचित इतना ढीठ नहीं हो सकता। ऐसी बात तो गुह ही प्रेम-प्रेरणावश कह सकता था। अपरिचित केवटमें एकाएक प्रेमोत्पत्ति हो कैसे सकती है कि वह कहे कि मैं उस धूलको धोनेके पश्चात् आपको नावपर पग रखने दूँगा। जिस गुहने रात्रि श्रीरामके साथ जागकर व्यतीत की, वह गङ्गापार करनेके समय उपस्थित न था और यदि था तो चुपचाप उस केवटकी धृष्टताको सहन करता रहा। जो श्रीरामके साथ वन गया, वह नावका प्रबन्ध न करे और प्रभुको पार जानेके समय घरमें बैठा रहे—ऐसी कल्पना नहीं हो सकती; क्योंकि गुहने श्रीरामका साथ शृङ्गवेरपुरमें कभी नहीं छोड़ा था।

प्रश्न हो सकता है कि गुहके संकेतपर ही उस केवटने पग पखारनेको कहा हो। उत्तर है कि जो गुह उसके पूर्व स्वयं सेवामें तल्लीन रहा हो, वह विशेष पाँव पखारनेके लिये अन्यको लगा दे, ऐसी बात कदापि नहीं हो सकती। यदि गुहका ऐसा संकेत माना जाता है तो गुहमें राजा होनेका अहंकार आ जाता है। उसका खण्डन उसकी रामकी पूर्व सेवासे हो जाता है। अतः नावमें चढ़ानेके पूर्व उसने स्वयं पादप्रक्षालनका हठ प्रेमाधिक्यवश किया था, यहाँ अन्य किसी केवटमें प्रेमाधिक्यका आरोपण करना आधारहीन तथा न्याययुक्त नहीं है; फिर यदि वह व्यक्ति केवट मान लिया जाता है तो जिसे श्रीरामने सखा मान लिया था, क्या उसकी ओर उनकी दृष्टि न जाती कि वह केवट क्या कर रहा है; और स्वयं गुह मौन धारणकर उसे मनमानी करने देता। यों करनेमें क्या उसकी प्रतिष्ठामें बट्टा न लगता ? फिर जब वह कठौता लेकर श्रीरामजीके पग धोने लगा था, तब देवताओंने उसके भाग्यकी सराहना करते पुष्प बरसाये थे; ऐसी दशामें क्या गुह अपनेको इस दुर्लभ परम प्रतिष्ठासे वञ्चित रख सकता था। अतः सिद्ध है कि केवट कोई अन्य व्यक्ति न होकर स्वयं गुह था, जिसने पाद-प्रक्षालन किया था। चूँकि नावके खेनेवालेको केवट कहते हैं, इसीलिये 'केवट' शब्दका व्यवहार इस प्रसंगमें किया गया है। जो पहले सब प्रकारकी सेवा स्वयं करे; वह पाद-प्रक्षालनकी सर्वश्रेष्ठ सेवा, जिससे ब्रह्मा भी विरत नहीं हो सके, अन्य व्यक्तिको सौंप दे, तर्कमयी बुद्धि इसको स्वीकार नहीं कर सकती।

अब आगे विचारणीय स्थल आता है—

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा॥

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥

श्रीसीताराम और लक्ष्मण नावसे उतरकर रेतीमें खड़े थे और उनके पीछे गुह भी उनके निकट जाकर खड़ा हुआ। उसने प्रभु रामको प्रणाम किया, भगवान् श्रीरामको नावकी उतराई देनेके लिये, संकोचशील मुद्रामें, मातेश्वरी श्रीसीताजीने देखा। तत्काल मणि-मुँदरी हाथसे निकालकर प्रभुके हाथमें धर दी। पतिव्रता स्त्री अपना सर्वस्व पतिकी इच्छापूर्तिमें लगा देती है; फिर वे तो अग्रगण्या सती थीं, वे क्यों न ऐसा करतीं।

प्रश्न है कि 'गुह तो पहले उतरा और तीनों मूर्तियोंके निकट खड़ा था और केवटने नावसे पीछे उतरकर भगवान् श्रीरामको दण्डवत् की थी। अतः गुह और केवट दो व्यक्ति थे ?' उत्तर यह है कि नावसे उतरनेकी बात एक चौपाईमें पूरी हुई और दूसरी अर्धालीमें केवट शब्द आया है। वह केवट अन्य न होकर गुह था। 'केवट' शब्दके प्रयोग करनेका रहस्य यह था कि गुह स्वयं नाव खेकर लाया था, इसलिये वहाँ 'केवट' शब्दका प्रयोग किया गया था। दण्डवत् करनेमें संकेत था कि प्रभुकी आज्ञा गङ्गा-पार करानेकी थी, वह पालन की गयी; उधर भगवान्ने समझा कि उतराई माँगनेका संकेत है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रेमवश गुहने स्वयं सब प्रकारकी सेवा की थी; तब वह पाद-प्रक्षालन क्यों दूसरेसे कराता। प्रेमाधिक्यके कारण वह पाद-प्रक्षालनके लिये अड़ गया था। यदि दूसरा व्यक्ति होता तो गुहको उस पार जानेकी आवश्यकता ही क्या थी। नाव चलानेके लिये एक केवटको भेज देता। परंतु उसने ऐसा नहीं

किया । उसने स्वयं नावको खेकर पार पहुँचाया । प्रधान मन्त्री सुमन्तजीने रामके रथको हाँका । राजा कंसने अपनी बहिन देवकीकी विदाईके समय रथ हाँका । लक्ष्मणने श्रीसीताको वन पहुँचानेमें रथ हाँका । आधुनिक कालमें अँगरेजोंके समयकी प्रथा थी कि रेलसे जब वायसराय आते थे, तब इंजिनकी ड्राइवरी स्वयं लोको सुपरिंटेंडेंट करते थे, लाइनकी परीक्षाके लिये स्वयं इंजीनियर मोटर ट्रालीपर जाते थे और गार्डके स्थानमें सुपरिंटेंडेंट ट्रान्सपोर्ट । तथा स्टेशन-मास्टर इंचार्जको, चाहे रात हो चाहे दिन, ट्रेन निकालनी पड़ती थी । उसी प्रकार चक्रवर्ती श्रीदशरथ महाराजके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीके लिये निषादराजने नावको चलाया था। नावसे उतरनेके पश्चात् गुह और केवट दो नामोंने भ्रम उत्पन्न कर रखा है, उधर गुह श्रीरामजीके साथ खड़ा था, उसके पश्चात् केवट प्रणाम करता है, इससे साफ जाहिर होता है कि दो व्यक्ति थे ।

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता । सीय रामु गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा । प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥

समाधान है कि 'उतरि' शब्द दो बार आया है, एकसे श्रीरामजीके उतरनेका संकेत है और दूसरेसे गुहकी प्रणाम करनेकी क्रिया प्रकट होती है । अर्थात् श्रीरामके साथ उतरकर उसने केवट रूपमें प्रणाम किया था; क्योंकि नावका खेनेवाला वही था । यदि शङ्का हो कि केवट-शब्द गुहके लिये नहीं आया था तो उसका समाधान यह है कि केवट ही शब्द गुहके लिये विविध स्थलोंमें आया है । जैसे—

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ॥
मिलि केवटहिं उमँगि अनुरागा । पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥

प्रश्न है कि—

बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ॥

जब उस केवटको विदा कर दिया, तब गुहका केवट होना कैसे प्रमाणित होता है ? उत्तर है कि भगवान् श्रीरामने विदा किया था, परंतु गुह प्रेमावेशके कारण जा नहीं सका । जब वह नहीं गया, तब फिर रामने कहा कि 'अब घर लौट जाओ ।'

तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू । सुनत सूख मुख भा उर दाहू ॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥
जेहि बन जाइ रहब रघुराई । परनकुटी मैं करबि सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई । सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई ॥
सहज सनेह राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू ॥

अन्तमें भक्तवत्सलको उसका हठ मानना पड़ा, इसके पश्चात् गुहने अपनी जातिवालोंको समझाकर घर लौटा दिया ।

पुनि गुहँ ग्याति बोलि सब लीन्हे । करि परितोषु बिदा तब कीन्हे ॥

गुहके अतिरिक्त ऐसे किसी भी निषादका उल्लेख श्रीतुलसीदासजीने नहीं किया कि जिसने श्रीरामजीसे सम्भाषण किया हो ।

सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करके निश्चय करनेकी आवश्यकता है कि गुह श्रीरामचन्द्रजीको आकर भेंट देता है, चटाई बनाता है, रात्रिभर पहरा देता है, श्रीरामके साथ कुछ दूरतक जाता है, फिर भरतके साथ चित्रकूट जाता है और श्रीरामजीके द्वारा 'सखा'की उपाधि प्राप्त करता है । परंतु यदि दूसरा व्यक्ति 'केवट' शब्दके आधारपर माना जाता है तो उसका उल्लेख कहीं भी पाँव धोनेके पहले होना चाहिये था; किंतु कहीं उसका नामतक नहीं लिया गया । फिर उसको विदाके समय भक्तिका वरदान भी मिल जाता है । परिवार-सहित पितरोंके साथ वह आवागमनसे भी मुक्त हो जाता है । परंतु जिसे रामने सखा माना, उसे न भक्तिका वरदान दिया न मुक्ति दी । न्यायशिरोमणि श्रीराम ऐसा अन्याय नहीं कर सकते थे । प्रत्युत केवटरूपमें गुह ही था, जिसको वरदानादि दिया था । कविके कुछ शब्द भ्रम साधारणतः उत्पन्न करते हैं; परंतु सूक्ष्म बुद्धिसे ऊहापोह करनेसे सिद्ध होता है कि गुह और केवट एक ही व्यक्ति थे । वनसे लौटनेपर गुह रामके दर्शनार्थ दौड़ आया—

सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल । आयउ निकट परम सुख संकुल ॥

राजगद्दी होनेके समय भी गुहको ही भगवान् रामने पारितोषिकादि देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी ।

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा । दीन्हे भूषन बसन प्रसादा ॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥

कहीं उस कल्पित केवटको भी बुलाया अथवा वही अपनी ओरसे उनके पास गया, जिनके पाद-प्रक्षालनके लिये व्यङ्गमय प्रेम प्रदर्शन किया था और त्यागमूर्ति बनकर मणिमुँदरी भी नहीं ली थी । लौटनेपर भेंट भी नहीं की । इससे सिद्ध है कि दूसरा व्यक्ति केवट कल्पनामय भ्रम है ।

संत कवि और पुनर्जन्म-भावना

(लेखक—डॉ० श्रीत्रिलोकीनारायणजी दीक्षित, एम्०ए०,डी०लिट्०)

जीवात्माका एक शरीर परित्याग करके दूसरा शरीर धारण कर लेना 'पुनर्जन्म' है। दूसरे शब्दोंमें आवागमनके क्रमसे जीवद्वारा अभिनव शरीर या शरीररूपी नव परिधान धारण कर लेना ही पुनर्जन्म है। जीवका बारंबार विभिन्न योनियोंसे होते मृत्यु एवं जन्मके क्रममें पड़ना ही पुनर्जन्म है। इस शब्दकी मूल विचारधाराको श्रीशंकराचार्यने बतलाया है—

'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।'

सृष्टिके प्रपञ्च, मायाके रूपावरण इसी पुनर्जन्मपर निर्भर हैं।

'कर्म' पुनर्जन्मकी आत्मा है। विधाताने 'कर्मप्रधान बिस्व करि राखा' है। यह 'कर्म' बड़ा विचित्र है। यथा विष प्राण लेने और प्राण देने (नवजीवन) का एक साधन बन जाता है, उसी प्रकार 'कर्म' भव-बन्धन और पुनर्जन्मके क्रममें मानवको प्रवृत्त एवं निवृत्त करनेमें पूर्णरूपेण समर्थ है। 'कर्म' के दोनों रूप एक दूसरेसे कितने भिन्न और पृथक् हैं! एक कितना सम्मोहक और दूसरा कितना भयानक! कर्म एक ओर मुक्ति दिलानेवाला है, तो दूसरी ओर वही बन्धनोंमें निबद्ध करनेके लिये सुदृढ़ रज्जुका कार्य करता है।

आत्मा या जीवन अविनाशी, चेतन, निर्लिप्त और निर्विकार माना गया है। फिर भी संसर्गके प्रभावसे वह संकल्प-विकल्प, सुख-दुःख, राग-द्वेष-युक्त कर्मोंमें प्रवृत्त होता ही है। ये ही विभिन्न कर्म उसके पुनर्जन्मके आधारभूत कारण हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार 'प्राणियोंकी सत्ताको समुत्पन्न करनेवाली विशेष रचना ही' कर्म है—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।
(गीता ८। ३)

कर्मका आधार और उत्पादक त्रिगुणात्मक प्रकृति है। इसी त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें संलग्न मानव-आत्मा कर्म करता है और ये ही कर्म बन्धनके आधार बन जाते हैं। प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही प्रकृतिसे समुत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही इस जीवात्माको अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म देता है।[1]

इन तीनोंका सङ्ग ही उच्च एवं निम्न योनियोंमें जन्मका कारण होता है। प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुण—सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण अविनाशी जीवात्माको शरीरके बन्धनमें बाँधते हैं।[2] इन तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला और विकाररहित है,[3] और समस्त देहाभिमानियोंको मोहित करनेवाले तमोगुणको तो अज्ञानसे उत्पन्न मानना चाहिये। वह इस जीवात्माको प्रमाद, आलस्य और निद्राके द्वारा बाँधता है (गीता १४। ८)। रागरूप रजोगुणको कामना और आसक्तिके रूपमें ग्रहण करना चाहिये (गीता १४। ७)। वह इस जीवात्माको कर्मोंके और उनके फलके सम्बन्धसे बाँधता है। गीताका यही भाव मनुस्मृतिमें भी प्रतिपादित हुआ है—

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥
(१२। ४०)

यह पुरुष शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप इन तीनों गुणोंका उल्लङ्घन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हुआ अमृतत्व—परमानन्दको प्राप्त होता है। (गीता १४। २०)।

जीवके कर्मोंके अनेक भेद हैं, जिनमें ये तीन प्रधान हैं—'संचित', 'प्रारब्ध' और 'क्रियमाण'। 'संचित' कर्म पूर्वमें किये हुए माने गये हैं। फलतः उनके संस्कार बीजरूपमें जीवनके साथ विद्यमान रहते हैं। 'प्रारब्ध' कर्म वे हैं—जिन्हें मानव इस जन्ममें अपने साथ उपभोगके लिये लाता है। जिन कर्मोंको अभी सकामभावसे मानव कर रहा है—वे हैं 'क्रियमाण'। अतः धर्म-शास्त्रका यह दृढ़ विश्वास है कि जीवके साथ कर्मोंका क्रम लगा रहता है। ज्ञान ही इन कर्मोंका विनाशक है, जैसे सूर्य तमका विनाशक है।

---

१. पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥
(गीता १३। २१)

२. सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥
(गीता १४। ५)

३. तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन ... बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।
गीता १४। ६

कर्मानुसार विभिन्न योनियोंसे होता हुआ मानव पुनर्जन्म प्राप्त करता रहता है। इन योनियोंकी संख्या चौरासी लाख है। इनमें सबसे श्रेष्ठ मानव-योनि है। इन योनियोंको चार भागोंमें विभाजित किया गया है।[1] विष्णुपुराणमें कहा गया है कि स्थावर योनियाँ बीस लाख हैं। जलचर नौ लाख, कूर्म नौ लाख, पक्षी दस लाख, पशु तीस लाख और वानर चार लाख हैं। इनके पश्चात् मानव-योनि है।[2] शास्त्रके अनुसार अनेक जन्मोंके बाद जीव मानव-शरीरको प्राप्त करता है। मानव स्वतः अपना उद्धारक है।[3] छान्दोग्योपनिषद्में भी कर्म-विभागके आधारपर पुनर्जन्मकी व्यवस्था की गयी है (५।१०।७)।

प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायका पुनर्जन्मपर विश्वास रहा है। यहाँ इस सम्बन्धमें किंचित् विचार कर लेना असंगत नहीं होगा। जैन-धर्मके पुनर्जन्मको मान्यता दी गयी है। जैन आचार्योंका मत है कि सत्कृत्योंके आधारपर ही मानवका जन्म उच्च कुल एवं समृद्ध परिवारमें होता है। उसके विपरीत निम्नकृत्योंसे मानव-जीवन पर्याप्त कष्टोंका भोग करता है। असंख्य अनुभवों और जन्मोंके पश्चात् मानव जीव कर्मसे मुक्ति पानेका प्रयत्न करता है और वह सम्यक् दृष्टि, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक् चरित्रके आधारपर वीतराग होकर, समस्त संकल्प-विकल्पोंसे मुक्ति पाकर मोक्ष प्राप्त करता है।

बौद्ध-दर्शनमें आत्मा अनित्य संघातमात्र है। इस परिस्थितिमें सत्-असत् कृत्योंका उत्तरदायित्व कौन भोगेगा? जब आत्माकी स्थिति है ही नहीं, तब पुनर्जन्म किसका होगा? कर्म-कर्ता अतीतमें विलीन हो जाता है और जो जन्मता है, उसने कर्म किया ही नहीं है; फिर फलका उपभोग कौन करेगा और क्यों करेगा? स्थिर कर्ताके अभावमें यदि कोई भी क्रिया हो सकती है तो स्थिर तत्त्वकी कल्पना विना पुनर्जन्म भी हो सकता है। बौद्ध-धर्ममें आत्माको दीप-शिखासे उपमा दी गयी है। दीप-शिखा जबतक प्रज्वलित है, तबतक उसकी लौ एक ही प्रतीत होती है। पर तथ्य यह है कि वह नवीन इन्धन या तेलके संयोगसे निरन्तर बदलती रहती है। दीप-शिखा एक इन्धन-संघात से द्वितीय इन्धन-संघातमें संक्रान्त होती रहती है और इस प्रकार उसका अस्तित्व हमारे नेत्रोंके सम्मुख विद्यमान रहता है।

ठीक इसी प्रकार जीवनके मृत्युक्षण एवं दूसरे जीवनके जन्म-क्षणमें दो क्षण समयके अतिरिक्त और अधिक अन्तर कहाँसे हो सकता है। प्रतिक्षण कर्म विनष्ट होते जाते हैं; परंतु उनकी वासना अगले क्षणमें अनुस्यूतरूपसे प्रवाहित होती है। इसीलिये अनित्यताको मानते हुए भी बौद्धोंने पुनर्जन्मको तर्कयुक्त माना है।[4]

इस्लाम-धर्ममें पुनर्जन्मको मान्यता नहीं दी गयी है। कुरानका मत है कि मानवका यह जन्म सर्वप्रथम और अन्तिम है। परंतु कुरानकी ही कुछ आयतोंमें पुनर्जन्मकी भावनाकी प्रतिच्छाया उपलब्ध होती है। कुरानकी एक आयत (५।९।४) में कहा गया है कि खुदा जिनपर क्रुद्ध हुआ, उनमेंसे कुछको उसने बंदर और सूअर बना दिया। इसी प्रकार पुनर्जन्म और आत्माकी अमरतासे सम्बन्धित विचार-धाराका भी प्रतिपादन हुआ है।[5] सुप्रसिद्ध कवि दार्शनिक रूमीकी निम्नलिखित 'मसनवी'में कहा गया है कि 'मैंने अनेक जन्म ग्रहण किये हैं और सात सौ सत्तर शरीरोंमें प्रकाशित हुआ हूँ।'

हम चु सब्जा बारहा रोईद अम्।
अफ्त सद् हफ्ताद् कालिब् दीद अम्॥

हिंदी-साहित्यमें पुनर्जन्मकी भावनापर विचार प्रकट करनेवाला सर्वप्रथम कवि 'स्वयम्भू' है। स्वयम्भू आठवीं शताब्दीका श्रेष्ठ कवि है, जिसकी दृष्टि हमारी सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक समस्याओंपर समानरूपसे प्रवेश पायी है। स्वयम्भूकी दृष्टिमें यह काया नरक है। कायासे प्राणपखेरू-के उड़ जानेपर यह कृमि-कीटका खाद्य बन जाता है। इसकी

---

१. उद्भिज्जाः स्वेदजाश्चैव अण्डजाश्च जरायुजाः।
इत्येवं वर्णिताः शास्त्रे भूतग्रामाश्चतुर्विधाः॥

२. स्थावरं विंशतिर्लक्षं जलजं नवलक्षकम्।
कूर्माश्च नवलक्षं स्युर्दशलक्षं च पक्षिणः॥
त्रिंशल्लक्षं पशूनां च चतुर्लक्षं तु वानराः।
ततो मनुष्यतां प्राप्य ततः कर्माणि साधयेत्॥
(बृहद्विष्णुपुराण)

३. उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
(गीता ६।५)

४. (बौधदर्शन—आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ १०५)

५. कुरान (२।२८; २।२।३; २।२५१; २२।६ आदि)

निस्सारताका कहाँतक कोई कवि वर्णन करे।[1] इस शरीरका आदि-अन्त सभी दुःखपूर्ण है। यह जबतक संसारमें रहता है, तबतक दुःखों और विपत्तियोंसे घिरा रहता है। इस संसारमें इसके पूर्व भी उसे नौ मासतक गर्भ-वास-दुःखका भोग करना ही पड़ता है। कविके शब्दोंमें ही इस गर्भवास-यातनाका वर्णन पढ़िये—

ताहि तेहंइं रस-वस-भूय-भरे। णव मास वसेंव्वउ देह घरे।
णव णाहिकमलु णत्थल्लु जहिं। पहिलउ जे पिंडु संबंधु तहिं।
दस दिवसु परिट्ठिउ रहिरजलु। कणुजेम पईयउ धारीणियलु।
विहि दस रत्तिहि समुट्ठिअउ। णं सिसिर बिंदु कुंकंम पडिउ।
दस रत्ति चउत्थहें वित्थरिउ। णांवइ पवलंकुरु णीसरउ॥

×　×　×　×

जेणु दुवारें आइयउ, जो तं परिहरे ण सक्कइ।
पंतिहि जुनु वइल्लु जिह भव संसारे मंमंतु ण थक्कइ॥[2]

संसारमें गर्भवासके द्वारा बारंबार इस आवागमनका कष्ट असहनीय है। यह तुच्छ संसार है। नरक-तुल्य, दुःखोंका सागर और अस्थिर है। कविके शब्दोंमें यह संसार—

को कारु भुयंगहों उब्वरइ। जं जगु जें सव्वु उवसंहरइ।
तहों जहि जहि कहिमि दिट्ठि रमइ। तहि तहि णं मइयवट्टु भमइ।
केंवि गिलइ विलइ केंवि उग्गिलइ। काहिमि जम्मावसाणि मिलइ।[3]

फिर इसके लिये मनुष्यको आवागमनका दुःख सहन करनेकी क्या आवश्यकता है। इस जन्म और पुनर्जन्मके संकटमय क्रमसे जितनी ही जल्दी अवकाश मिल जाय, उतना ही कल्याणकारी है। आवागमनका दुःख बड़ा व्यापक और कष्टदायक है।[4]

दसवीं शताब्दीके कवि तिलोपाने भी आवागमन-दुःखसे निवृत्ति पानेके लिये निर्वाण-साधनाका उपदेश दिया है।[5]

'नाथ' सम्प्रदायके अन्तर्गत भी आवागमन, पुनर्जन्म आदिकी कटु निन्दा की गयी है। पुनर्जन्मके द्वारा ही मानव भव-बन्धनोंमें फँसता है और भारी दुःखोंका सामना करता है। मानवका जीवन मृग-मरीचिकाओंमें फँसे हुए मृगकी तरह बहुत दुःख झेलता है। यदि यह पुनर्जन्मका क्रम विच्छिन्न हो जाय तो फिर परम पद या परम गतिको मानव प्राप्त कर लेता है। बाबा गोरखनाथके कथनानुसार आवागमन भ्रमका मार्ग है। असली पंथ तो उन पुरुषों तथा सिद्धोंका बताया हुआ है, जिन्होंने पहुँचके बाहरवाले (अतीत) अनहद नादको जागरित किया है और अन्तर्लीन हो गये हैं—

आवा गवण भरम का मारग, पुरषाँ पंथ बताया।
सबद अतीत अनादह बोलै, अंतरि गीत समाया॥[6]

इन पंक्तियोंमें अत्यन्त सारांशरूपमें हम नाथ-सम्प्रदायकी पुनर्जन्मविषयक विचारधाराके दर्शन कर सकते हैं।

अब हिंदीके संत कवियोंकी ओर ध्यान दीजिये। संत कवियोंका आविर्भाव नाथ-सम्प्रदाय या सिद्धोंकी परम्परामें माना जाता है। सिद्धोंकी विचारधाराका हिंदीके संतोंपर स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है।

सिद्धों और नाथोंकी भाँति संत कवियोंने बड़े स्पष्ट स्वरमें घोषित किया है कि यह संसार रहनेयोग्य नहीं है। यहाँ त्रिविध तापोंसे मानव सर्वदा दग्ध रहता है। संसार बालूकी भीतके सदृश अस्थायी है। मानवका श्वास-प्रश्वास जिस क्षण बंद हो जायगा, उसी क्षण अपने पराये बन जायँगे। संसारकी माया मानवको भ्रममें डाले रखती है।

कबीरके शब्दोंमें—

टुक जिंदगि बंदगि कर लेना, क्या माया मद मस्ताना॥
रथ घोड़े सुख पालकी, हाथी औ वाहन नाना।
तेरा ठाठ काठ की टाटी, यह चढ़ चलना समसाना॥

---

१. माणुसु देह होई घिणि, विठ्ठल्लु सिरेहि णिवद्धउ हड्डह पोट्टल्लु।
चल्लु कुंजंतु माय भउ कुहेंडउ। मलहों पुंजु किमि कीडहु खुडउ।
पूइगंध रुहिरामिस मंडउ। चम्प-रुक्खु दुग्गंध मडउ।
अंतहों पोट्टल्लु पविखहि मोयणु। बाहिहि भवणु मसाणहों मायणु।
(हिन्दीकाव्यधारा पृ० ११२)

२. हिंदी-काव्यधारा पृ० १२४।

३. हिंदी-काव्यधारा पृ० १२६।

४. इउ जणेंवि धीरहि अप्पणउं। करें कड्डुंण जोवहि दप्पणउ।
चउगइ संसार भमंत एण। आवत्तां वंत मरंत एण॥
जगे जीवें कोण रुवाविअउ। को गरुय भयहण मुआवियउ।
को कहिमि णाहि संताविअउ। को कहिमि ण आवइ पावियउ।
(हिंदी-काव्यधारा पृ० १२५)

५. (हिंदी-काव्यधारा पृ० १७२)

६. (गोरखवानीः डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ३६ पृ० २१६)

रूम पाट पाटंबर अंबर, करी बफ्तका बाना।
तेरे काज राजी गज चारिक भरा रहै तोसाखाना॥
खर्चेकी तदबीर करौ तुम, मंजिल लंबी जाना।
पचंतेका गाँव न मगमें, चौकि न हाट दुकाना॥
जीते जी ले जीति जनम कौ, यही गोय यहि मदाना।
कहै कबीर सुनो भइ साधो, नहिं कलि तरन जतन आना॥
(संतबानी-संग्रह भाग २, पृ० ७)

इन पङ्क्तियोंमें संसारकी क्षणभङ्गुरताकी अभिव्यक्ति ही नहीं हुई, वरं कवि इस आवागमनसे मुक्ति पानेके लिये आग्रह भी करता है। 'जीते जी ले जीत जनम को' तथा 'नहिं कलि तरन जतन आना' में भव-बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये बार-बार उपदेश दिया गया है।

संत मलूकदासके अनुसार यह संसार मुर्दोंका प्रदेश है। कविके शब्दोंमें—

मुवा सकल जग देखिया, (मैं तो) जियत न देखा कोय हो॥
मुवा मुई को व्याहता रे, मुवा व्याह करि देय।
मुए बराते जात हैं, (एक) मुवा बधाई लेय हो॥
मुआ मुए से लड़न को, मुआ जोर लय जाय।
मुरदे मुरदे लड़ि मरे, (एक) मुरदा मन पछिताय हो॥
अंत एक दिन मरोगे रे, गलि गुलि जहै चाम।
ऐसी झूठी देह ते काहे लेव न साँचा नाम हो॥
मरने मरना भाँति है (रे) जौ मरि जानै कोय।
राम दुवारे जो मरैं, फिर बहुरि न मरना होय रे॥
(मलूकदासकी बानी पृ० १४)

प्रस्तुत उद्धरणकी अन्तिम दो पङ्क्तियाँ विशेषरूपसे विचारणीय हैं। संसार मरता चला जा रहा है, परंतु मरना कोई नहीं जानता। मरना उसीका सफल है, जो 'राम-दुवारे' पर मरकर अमरत्वको प्राप्त कर ले और पुनर्जन्मके बन्धनसे अवकाश प्राप्त कर ले। संत नामदेव भी पुनर्जन्मसे मुक्ति प्राप्त करनेके पक्षपाती हैं—

अस मन लाव राम रसना। तेरो बहुरि न होई जनम मरना॥
(संतबानी-संग्रह २।२९)

इसी प्रकार रैदास[1], धनी धर्मदास[2], नानक[3], दरिया साहब (मारवाड़वाले)[4] तथा चरनदास आदि संत कवियोंने संसार-की असारताके प्रति मानवको चेतावनी देते हुए यहाँसे मुक्ति प्राप्त कर लेनेका उपदेश दिया है। यह मानव-जन्म बड़ा दुर्लभ है। यदि सुकृतोंके अर्जनसे एक बार अवसर मिल गया है तो मानव जाग्रत् होकर आवागमनसे छुटकारा प्राप्त कर सकता है। कबीरके शब्दोंमें—

मनुष जन्म दुर्लभ अहै, होय न बारंबार।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार॥

यदि इस जन्ममें सुकृतका व्यापार और आत्माको पहचाननेका काम मानवने न किया तो फिर उसे पशुकी योनिमें जन्म लेना पड़ेगा[6]। कबीरने आवागमन और पुनर्जन्मके बन्धनकी बड़ी कटु आलोचना की है। कविके शब्दोंमें—

जो आवै तौ जाय नहिं, जाय तौ आवै नाहिं[7]।

यह बार-बारका जीना-मरना लज्जाजनक है। फिर भी संसार उससे पृथक् मार्गका अनुसरण नहीं करता; क्योंकि माया उसके नेत्रोंपर अज्ञानका पर्दा डाले हुए है—

उपज निपजै निपज समाई। नैननि देखि चल्यो जग जाई॥
लाज न मेरो, कहो घर मेरा। अंत कि बार नहीं कछु तेरा॥
अनेक जतन करि काया पाली। मरती बेर अगिन सँग जाली[8]॥

चौरासी लक्ष योनियोंमें मानवका जन्म सर्वश्रेष्ठ है, फिर भी मानव सचेत होकर भवबन्धनसे मुक्तिके लिये सुकृत अर्जन नहीं करता है[9]।

आवागमनका क्रम विनष्ट करके मुक्ति प्रदान करानेवाले सत्-गुरु हैं। धनी धर्मदासके शब्दोंमें—

गुरु मिले अगम के वासी।
उन के चरन कमल चित दीजै, सतगुरु मिले अविनासी[1]।

---

१. संतबानी संग्रह भाग २, पृष्ठ ३२
२. „ „ „ ३०।२
३. „ „ „ ४६।१-१
४. संतबानी-संग्रह भाग २ पृष्ठ १५३।१
५. „ „ „ ८१।३
६. „ „ १ पृष्ठ १३।४८
७. „ „ „ ११।३१
८. „ „ „ ३४।४
९. „ „ भाग २ ८।१०
१०. „ „ „ पृष्ठ २१।१
१. „ „ ११ ३७।२

नामदेवके अनुसार राम-नाम इस जरा-मरणसे मुक्ति दिलानेवाला है[1]।

संतोंके मतानुसार मानवका कर्मविधान उसे मुक्ति प्रदान करनेवाला है। निष्काम सुकृतोंके अर्जनसे मुक्ति और दुष्कृत्योंमें रहनेसे आवागमनका चक्र प्राप्त होता है। कर्मकी खेतीमें जैसा बीज डाला जायगा, वैसा ही फल उत्पन्न होगा—

कलीकाल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ।
अनबावै लोहा दाहिणें, बवै सु लुणता होइ॥
(कबीर-ग्रन्थावली, ३२।२)

कर्म ही मुक्ति दिलानेवाला है और कर्म ही भ्रमके चक्रमें डालनेवाला है।

गोबरकी उपादेयता

अमेरिकासे प्रकाशित 'टाइम' पत्रिकाके २३ जूनके एक लेखमें आया है—

दक्षिण अमेरिकाके ब्रेज़िल देशमें एक प्रकारका छोटा कीड़ा होता है, उसे वहाँके लोग बार्बे (Barbeiros) कहते हैं। ये क्षुद्रातिक्षुद्र कीटाणु अधिकतर छोटे बच्चोंको काटते हैं, इससे बच्चोंके हृदयको विशेष हानि पहुँचती है। और वह शरीरको तोड़कर अन्तमें मृत्युतक पहुँचा देती है। बड़ी उम्रके लोग इनके काटनेसे कमजोर होकर मर जाते हैं। ब्रेज़िलकी जन-संख्या ६ करोड़ है। इनमेंसे ४० लाख आदमी इससे म चुके हैं। दक्षिण अमेरिकाके बाहिया और ब्लाङ्कानामक देशोंमें मृत्यु-संख्या और भी अधिक है।

डाक्टर पिन्नोट्टी (Dr. Pinnotti) स्वास्थ्य-विभागके एक डाक्टर हैं। उनका इस ओर ध्यान गया कि ये कीड़े गरीब ब्रेज़िलनिवासियोंके मिट्टीके घरोंकी दरारोंमें रहते और बढ़ते हैं। इन दरारोंको बंद कर दिया जा तो इन भयानक कीड़ोंके काटनेसे बचा जा सकता है। पर कम खर्चमें कैसे इन दरारोंको बंद किया जाय

डाक्टर पिन्नोट्टी लिखते हैं कि 'रातको इस विषयपर सोचते-सोचते मुझे याद आया कि लड़कपनमें ह लोग पक्षियोंके घरोंपर पत्थर मारते; पर वे लोहे-जैसे इतने मजबूत होते कि किसी प्रकार भी टूटते नहीं। वे गोबर तथा बालूके बने होते थे। मुझे रास्ता सूझ गया—मैं अपने दल-बलको लेकर ब्रेज़िलके गरीबोंकी कुटि की दीवालोंको गोबर-मिट्टी मिलाकर उससे अच्छी तरह लीप देनेके लिये चल दिया। आदमी लगा दिये गये गतवर्ष १००० कुटियोंकी परीक्षा की गयी। इन कुटियाओंमें लगभग प्रत्येकमें ९० प्रतिशत बार्बेरो कीड़ों उपद्रव था। छः महीनेमें यह उपद्रव बिलकुल मिट गया। गत सप्ताह एक लाख कुटियोंकी दीवालों तथा आँगनों गोबरसे लीपनेकी व्यवस्था की गयी है।'

अपने घरकी इन चीजोंकी महिमा हमलोग भूल गये। गाँवोंमें गोबर-मिट्टीका ही सर्वत्र चौका लगता थ इसीसे दीवारें लीपी जाती थीं और गोबरकी पुल्टिश बाँधकर जानकार लोग घावोंको आराम करते थे। अ विलायती डाक्टरोंके मुखपत्र 'ब्रिटिश मेडिकल जरनल'के २६ अप्रैलके अङ्कमें निकला है कि 'चागालोग गोबरव लेप करके घावोंको अच्छा करते थे। अब वैज्ञानिकोंको भी प्रमाण मिल गया है कि इससे घाव अच्छे होते हैं। (भारताजिर)

१. संतबाणी-संग्रह भाग २, २९। ३

गाण्डीव धनुषका इतिहास

(लेखक—पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

गाण्डीव धनुषका इतिहास बड़ा रहस्यमय है। इसके इतिहासमें कई धनुषोंका इतिहास छिपा है। यों महाभारतमें तो इसके सम्बन्धमें इतना ही कहा गया है कि खाण्डव-दाहके समय अग्निने उसे वरुणसे माँगकर अर्जुनको दिया था (आदि-पर्व २२५) तथा महाप्रस्थानके समय उसे वरुणको ही वापस करनेके लिये अर्जुनसे पुनः माँगा और अर्जुनने उसे पानीमें फेंक दिया था (महाप्रास्थानिकपर्व १। ४१-४२)। विराट-पर्वमें स्वयं अर्जुनने इसे ब्रह्मा, इन्द्र, सोम तथा वरुणद्वारा धारण किये जानेकी भी बात बतलायी है।

किंतु यह धनुष वरुणके पास कैसे आया, इस सम्बन्धमें विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके प्रथम खण्डके ६५-६६-६७ अध्यायोंमें एक बड़ी रोचक कथा आती है। कई पुराणोंमें तथा इसमें भी परशुरामजीके कैलासमें रहकर शंकरजीसे शस्त्र तथा शास्त्र-विद्या ग्रहण करनेकी बात आयी है। उनके वहीं रहते हुए इन्द्रकी प्रार्थनापर भगवान् शंकरने परशुरामद्वारा बहुत-से राक्षसोंको भी मरवा डाला। फिर इन्द्रने परशुरामद्वारा पातालवासी राक्षसोंको मरवानेके लिये भगवान् शंकरसे प्रार्थना की। भगवान्ने कहा—'ऐसा ही होगा।' तत्पश्चात् उन्होंने परशुरामजीको बुलाकर कहा कि तुम पातालमें जाओ और वहाँके दुराचारी असुरोंका संहार करो। श्रेष्ठ वैष्णव धनुषको मैंने तुम्हारे पिताको दे दिया है। साथ ही इस अक्षय तूणको भी ले लो। इनके सहारे तुम उन राक्षसोंको मार डालो।' फिर तूण देकर भगवान् शंकरने उनसे कहा कि 'देखो, तुम इस तरकसको तो महर्षि अगस्त्यको दे देना और वे उसे अतियशस्वी श्रीरघुकुलभूषण राघवेन्द्र रामको देंगे[1]। तुम भी श्रीरामके दर्शनके बाद शस्त्र मत धारण करना। तुम्हारा अत्यन्त प्रचण्ड वैष्णव तेज रामके मिलते ही देवकार्यार्थ उनमें प्रवेश कर जायगा।'

इसपर परशुरामजीने पूछा कि 'यह वैष्णव धनुष आपके हाथमें कैसे आया तथा वह धनुषोंमें रत्न कैसे हुआ?' शंकरजीने बतलाया कि "एक बार वैष्णवी मायासे मोहित होकर देवताओं तथा ऋषियोंने ब्रह्माजीके पास जाकर पूछा कि 'भगवान् वासुदेव तथा महादेवमें कौन बड़ा है?' इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने जो बात बतलायी, वह बड़ी विलक्षण थी। उन्होंने कहा कि 'दोनोंमें तुम युद्ध करा दो। फिर तो अपने-आप पता चल जायगा कि दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है।' फिर क्या था, सबोंने मिलकर हमें लड़ा दिया। वह युद्ध बड़ा ही भयानक था। उसे देखकर सभी जीव डर गये, तब ब्रह्माजीने तथा ब्रह्मर्षियोंने वहाँ आकर प्रार्थना की कि 'आप दोनों ही विश्वके स्वामी हैं। आपलोगोंका युद्ध उचित नहीं। बस, आपके युद्धका निपटारा यों हो जाय कि आप दोनों एक दूसरेके धनुषको लेकर उसे चढ़ा दें।' इसपर भगवान् विष्णुने तो मेरे चापको आरोपित कर दिया, पर प्रयत्न करनेपर भी मैं वैष्णव-धनुषको चढ़ा न सका[2]। तदनन्तर भगवान् विष्णुके प्रभावको जानकर मैंने उनकी बड़ी स्तुति की।

"मेरी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु बोले—'वस्तुतः हम, आप और ब्रह्माजीमें कोई अन्तर नहीं है। हम तीनों ही तत्त्वतः एक हैं। जो आपको नमस्कार करते हैं, आपकी

---

१. अगस्त्यद्वारा श्रीरामको अक्षय तरकस आदि प्रदानकी कथा वाल्मीकि-रामायण, अरण्यकाण्डके १२वें अध्यायके अन्तमें आती है।

२. यह नहीं कहा जा सकता कि वैष्णवपुराण होनेके नाते इसमें विष्णुभगवान्का उत्कर्ष दिखलाया गया है, बल्कि निष्पक्ष वाल्मीकि-रामायण, बालकाण्डके ७५वें अध्यायमें भी इस युद्धका वर्णन इन शब्दोंमें आया है—

शितिकण्ठस्य विष्णोश्च बलाबलनिरीक्षया।
अभिप्रायं तु विज्ञाय देवतानां पितामहः॥
विरोधं जनयामास तयोः सत्यवतां वरः।
विरोधे तु महद्युद्धमभवद् रोमहर्षणम्॥
तदा तु जृम्भितं शैवं धनुर्भीमपराक्रमम्।
हुंकारेण महादेवः स्तम्भितोऽथ त्रिलोचनः॥
देवैस्तदा समागम्य ऋषिसङ्घैः सचारणैः।
याचितौ प्रशमं तत्र जग्मतुस्तौ सुरोत्तमौ॥
जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमैः।
अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा॥
(वाल्मी० ७५। १५—२०)

वाल्मीकिको विष्णुपरक भी कहना कठिन है; क्योंकि अप्पय्य दीक्षितने बहुत प्रमाणोंसे अपने 'रामायण-तात्पर्य-निर्णय' ग्रन्थमें इसे शिवपरक ही सिद्ध किया है।

परामक्ति करते हैं, वे मेरे धामको प्राप्त होते हैं[1] । अस्तु ! अब आप मेरे इस धनुषरत्नको रखें । इसे आप भार्गवनन्दन जमदग्निको दे देंगे । उनसे उनके पुत्र परशुराम ले लेंगे । वे उससे पातालवासी असुरोंका संहार करके श्रीरामको देंगे । अपना कार्य समाप्तकर श्रीरामचन्द्रजी उसे वरुणको दे देंगे । देवकार्यार्थ अर्जुन उसे महात्मा वरुणसे ग्रहण करेंगे । साथ ही अपने इस धनुषको आप जनकको दे दें[2] । वे इस समय निमि नामसे पृथ्वीमें प्रसिद्ध हैं । उस धनुषसे भी वे राजा एक महान् कार्य सम्पादन करेंगे ।' यों कहकर भगवान् विष्णु चले गये और मैंने उनके कथनानुसार एकको तुम्हारे पिता तथा दूसरेको निमिको दे दिया[3] ।''

भगवान् शंकरकी आज्ञासे परशुरामजीने सब कुछ वैसे ही किया । इसकी विस्तृत कथा वहाँ आगे है । पर इससे स्पष्ट होता है कि वही धनुष परशुरामजीने भगवान् रामचन्द्रको दिया और वही आगे चलकर पुनः वरुणद्वारा अर्जुनको मिला तथा यही वह गाण्डीव था ।

तीर्थराज प्रयाग

(लेखक—डा० श्रीशिवशेखरजी मिश्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

हिंदू तीर्थोंमें प्रयाग, काशी तथा गया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीर्थ माने जाते हैं । ये तीनों तीर्थ अपनी ख्यातिके कारण त्रिस्थलीके नामसे प्रसिद्ध हैं । नारायण भट्ट (१५८० ई०) ने वाराणसीमें त्रिस्थलीसेतु नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने प्रयाग, काशी तथा गया—तीनोंका विस्तृत वर्णन किया है ।

प्रयागके माहात्म्यका वर्णन ऋग्वेदके खिल सूक्तमें इस प्रकार प्राप्त होता है:—

सितासिते सरिते यत्र संगते
तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते
जनासो अमृतत्वं भजन्ते ॥
(१० । ७५)

त्रिस्थलीसेतुमें इसे आश्वलायन शाखाके अन्तर्गत आयी हुई श्रुति बतलाया गया है, किंतु 'तीर्थचिन्तामणि'के अनुसार यह ऋग्वेदका ही सूक्त है । इस सूक्तके अनुसार जो व्यक्ति सित तथा असित अर्थात् गङ्गा तथा यमुनाके संगमपर स्नान करता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है । और जो यहाँ अपना शरीर छोड़ता है, वह मोक्षको प्राप्त करता है । मत्स्य (अध्याय १०३ — ११२), कूर्म (१ । ३६ । ३९), पद्म (१ । ४० — ४९) तथा स्कन्दपुराण (काशीकाण्ड ७ । ४५ — ६५) प्रयागको बहुत ही पवित्र स्थान मानते हैं । महाभारतके एक स्थलपर प्रयागमें स्नानद्वारा स्वर्गप्राप्तिका उल्लेख है—

दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः ॥
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ ।
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः ॥
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ।
(अनुशासनपर्व २५ । ३६—३८)

---

१. (क) योऽहं स देवः परमेश्वरस्त्वं योऽहं स देवः प्रपितामहश्च । (विष्णुधर्म० १ । ६६ । २६)
(ख) भक्त्या च नित्यं तव पूजयन्ति स्थानं हि तेषां सुलभं मदीयम् । (विष्णुधर्म० १ । ६६ । २९)

२. तच्चापरत्नं भुवि राघवाय प्रदास्यते राम इति श्रुताय । कृत्वा स रामोऽपि हि तेन कर्म प्रदास्यते तद्वरुणाय चापम् ॥ तस्मात्समादास्यति फाल्गुनोऽपि देवार्थकार्यैकरतिर्महात्मा । स्वं चापरत्नं जनकाय देहि निमीतिनाम्ना भुवि शब्दिताय ॥
(वि० ध० ६७ । ३१—३३)

३. 'मानसपीयूष' के सम्पादकने "करि बिनती निज कथा सुनाई । रंग अवनि सब मुनिहि दिखाई ॥" की व्याख्यामें अनेक टीकाओंसे अनेक रोचक कथाएँ संगृहीत की हैं । किंतु इस कथाका वहाँ उल्लेख नहीं मिलता ।

इसी प्रकार महाभारतके अन्य स्थलोंपर भी 'प्रयाग'के माहात्म्यका वर्णन हुआ है। वाल्मीकीय रामायणमें भी प्रयागका वर्णन प्राप्त होता है (देखिये वा० रा० २। ५४। ६)।

प्रयागके लिये 'तीर्थराज' शब्दका प्रयोग अनेक स्थलोंपर हुआ है। तीर्थराजका अर्थ है 'तीर्थोंका राजा'। पद्मपुराणमें 'स तीर्थराजो जयति प्रयागः' (६। २३। २७-३५) ऐसा उल्लेख है। मत्स्य तथा स्कन्दपुराणमें इसी प्रकारके प्रसङ्ग मिलते हैं। प्रयागको तीर्थराज इसलिये कहा जाता है कि एक बार ब्रह्माने यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने प्रयागको मध्यवेदी, कुरुक्षेत्रको उत्तरवेदी तथा गयाको पूर्ववेदी बनाया।

प्रयागमें गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती—तीनों धाराएँ मिलकर दो धाराओंमें परिणत हो जाती हैं। इसीसे इसका नाम त्रिवेणी तथा संगम पड़ा। मत्स्यपुराणमें ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि प्रयागतीर्थके दर्शनमात्र अथवा स्मरणमात्रसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है—

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥
(मत्स्यपु० १०४। १२)

कूर्मपुराण (१। ३६। २७) तथा अग्निपुराण (स्तवनादस्य तीर्थस्य—१११। ६-७) में इसी प्रकारके प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। कूर्मपुराणमें इसे प्रजापतिका क्षेत्र कहा गया है—

एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥
(१। ३६। २०)

मत्स्य (१०४। ५; १११। १४) तथा नारदीयपुराण (उत्तर० ६३। १२७-२८) भी इसे प्रजापतिका क्षेत्र मानते हैं।

प्रयागमें विष्णु सदैव अपनी योगमूर्तिमें प्रतिष्ठित रहते हैं (नारदीयपुराण ६५। १७)। रुद्र भी यहाँ निवास करते हैं। जब उन्होंने अपने त्रिनेत्रसे संसारको भस्मीभूत किया था, उस समय प्रयाग भस्म नहीं हुआ था। इसी कारण मत्स्यपुराणमें प्रयागको त्रिदेवोंका निवासस्थान बतलाया गया है—

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति।
वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति॥
माहेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥
(१११। ४, १०)

कूर्म (१। ३६। २३, २६) तथा पद्मपुराण (आदिखण्ड ४१। ६-१०) में इसीसे समानता रखनेवाले श्लोक मिलते हैं। मत्स्यपुराणमें ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि जो व्यक्ति एक मासतक सांसारिक प्रलोभनों एवं मैथुनादि क्रियासे विरक्त रहकर प्रयागमें निवास करता हुआ देवता एवं पितरोंका पूजन करता है, वह अपने मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करता है (मत्स्यपुराण १०४। १८)।

प्रयागका यह महत्त्व वास्तवमें उसे तीर्थराज-पदपर प्रतिष्ठित करनेवाला है। इस तीर्थकी पवित्रता मनुष्यको इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख प्रदान करनेवाली है। तीर्थराजका महत्त्व आज भी कम नहीं हुआ है, वरं उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता जाता है। आज भी अनेक तीर्थयात्री तीर्थराजके दर्शन-हेतु तथा त्रिवेणी-संगममें स्नान करनेके हेतु प्रयागकी ओर बढ़ते चले जाते हैं। इसीमें वे अपने जीवनको सार्थक समझते हैं। भारतका कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो 'तीर्थराज प्रयाग'के नामको सुनकर नतमस्तक नहीं हो जाता।

परामक्ति करते हैं, वे मेरे धामको प्राप्त होते हैं[1]। अस्तु! अब आप मेरे इस धनुषरत्नको रखें। इसे आप भार्गवनन्दन जमदग्निको दे देंगे। उनसे उनके पुत्र परशुराम ले लेंगे। वे उससे पातालवासी असुरोंका संहार करके श्रीरामको देंगे। अपना कार्य समाप्तकर श्रीरामचन्द्रजी उसे वरुणको दे देंगे। देवकार्यार्थ अर्जुन उसे महात्मा वरुणसे ग्रहण करेंगे। साथ ही अपने इस धनुषको आप जनकको दे दें[2]। वे इस समय निमि नामसे पृथ्वीमें प्रसिद्ध हैं। उस धनुषसे भी वे राजा एक महान् कार्य सम्पादन करेंगे।' यों कहकर भगवान् विष्णु चले गये और मैंने उनके कथनानुसार[3] एकको तुम्हारे पिता तथा दूसरेको निमिको दे दिया।''

भगवान् शंकरकी आज्ञासे परशुरामजीने सब कुछ वैसे ही किया। इसकी विस्तृत कथा वहाँ आगे है। पर इससे स्पष्ट होता है कि वही धनुष परशुरामजीने भगवान् रामचन्द्रको दिया और वही आगे चलकर पुनः वरुणद्वारा अर्जुनको मिला तथा यही वह गाण्डीव था।

तीर्थराज प्रयाग

(लेखक—डा० श्रीशिवशेखरजी मिश्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

हिंदू तीर्थोंमें प्रयाग, काशी तथा गया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीर्थ माने जाते हैं। ये तीनों तीर्थ अपनी ख्यातिके कारण त्रिस्थलीके नामसे प्रसिद्ध हैं। नारायण भट्ट (१५८० ई०) ने वाराणसीमें त्रिस्थलीसेतु नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने प्रयाग, काशी तथा गया—तीनोंका विस्तृत वर्णन किया है।

प्रयागके माहात्म्यका वर्णन ऋग्वेदके खिल सूक्तमें इस प्रकार प्राप्त होता है:—

सितासिते सरिते यत्र संगते
तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते
जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥
(१० । ७५)

त्रिस्थलीसेतुमें इसे आश्वलायन शाखाके अन्तर्गत आयी हुई श्रुति बतलाया गया है, किंतु 'तीर्थचिन्तामणि'के अनुसार यह ऋग्वेदका ही सूक्त है। इस सूक्तके अनुसार जो व्यक्ति सित तथा असित अर्थात् गङ्गा तथा यमुनाके संगमपर स्नान करता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है। और जो यहाँ अपना शरीर छोड़ता है, वह मोक्षको प्राप्त करता है। मत्स्य (अध्याय १०३— ११२), कूर्म (१ । ३६ । ३९), पद्म (१ । ४०— ४९) तथा स्कन्दपुराण (काशीकाण्ड ७ । ४५— ६५) प्रयागको बहुत ही पवित्र स्थान मानते हैं। महाभारतके एक स्थलपर प्रयागमें स्नानद्वारा स्वर्गप्राप्ति का उल्लेख है—

दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः॥
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ।
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः॥
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्।
(अनुशासनपर्व २५ । ३६–३८)

---

१. (क) योऽहं स देवः परमेश्वरस्त्वं योऽहं स देवः प्रपितामहश्च। (विष्णुधर्म० १ । ६६ । २६)
(ख) भक्त्या च नित्यं तव पूजयन्ति स्थानं हि तेषां सुलभं मदीयम्। (विष्णुधर्म० १ । ६६ । २९)

२. तच्चापरत्नं भुवि राघवाय प्रदास्यते राम इति श्रुताय। कृत्वा स रामोऽपि हि तेन कर्म प्रदास्यते तद्वरुणाय चापम्॥ तस्मात्समादास्यति फाल्गुनोऽपि देवार्थकार्यैकरतिर्महात्मा। स्वं चापरत्नं जनकाय देहि निमीतिनाम्ना भुवि शब्दिताय॥ (वि० ध० ६७ । ३१–३३)

३. 'मानसपीयूष' के सम्पादकने "करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि दिखाई॥" की व्याख्यामें अनेक टीकाओंसे अनेक रोचक कथाएँ संगृहीत की हैं। किंतु इस कथाका वहाँ उल्लेख नहीं मिलता।

इसी प्रकार महाभारतके अन्य स्थलोंपर भी 'प्रयागके माहात्म्यका वर्णन हुआ है। वाल्मीकीय रामायणमें भी प्रयागका वर्णन प्राप्त होता है (देखिये वा० रा० २। ५४। ६)।

प्रयागके लिये 'तीर्थराज' शब्दका प्रयोग अनेक स्थलोंपर हुआ है। तीर्थराजका अर्थ है 'तीर्थोंका राजा'। पद्मपुराणमें 'स तीर्थराजो जयति प्रयागः' (६। २३। २७-३५) ऐसा उल्लेख है। मत्स्य तथा स्कन्दपुराणमें इसी प्रकारके प्रसङ्ग मिलते हैं। प्रयागको तीर्थराज इसलिये कहा जाता है कि एक बार ब्रह्माने यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने प्रयागको मध्यवेदी, कुरुक्षेत्रको उत्तरवेदी तथा गयाको पूर्ववेदी बनाया।

प्रयागमें गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती—तीनों धाराएँ मिलकर दो धाराओंमें परिणत हो जाती हैं। इसीसे इसका नाम त्रिवेणी तथा संगम पड़ा। मत्स्यपुराणमें ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि प्रयागतीर्थके दर्शनमात्र अथवा स्मरणमात्रसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है—

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥
(मत्स्यपु० १०४। १२)

कूर्मपुराण (१। ३६। २७) तथा अग्निपुराण (स्तवनादस्य तीर्थस्य—१११। ६-७) में इसी प्रकारके प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। कूर्मपुराणमें इसे प्रजापतिका क्षेत्र कहा गया है—

एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥
(१। ३६। २०)

मत्स्य (१०४। ५; १११। १४) तथा नारदीयपुराण (उत्तर० ६३। १२७-२८) भी इसे प्रजापतिका क्षेत्र मानते हैं।

प्रयागमें विष्णु सदैव अपनी योगमूर्तिमें प्रतिष्ठित रहते हैं (नारदीयपुराण ६५। १७)। रुद्र भी यहीं निवास करते हैं। जब उन्होंने अपने त्रिनेत्रसे संसारको भस्मीभूत किया था, उस समय प्रयाग भस्म नहीं हुआ था। इसी कारण मत्स्यपुराणमें प्रयागको त्रिदेवोंका निवासस्थान बतलाया गया है—

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति।
वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति॥
माहेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥
(१११। ४, १०)

कूर्म (१। ३६। २३, २६) तथा पद्मपुराण (आदिखण्ड ४१। ६-१०) में इसीसे समानता रखनेवाले श्लोक मिलते हैं। मत्स्यपुराणमें ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि जो व्यक्ति एक मासतक सांसारिक प्रलोभनों एवं मैथुनादि क्रियासे विरक्त रहकर प्रयागमें निवास करता हुआ देवता एवं पितरोंका पूजन करता है, वह अपने मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करता है (मत्स्यपुराण १०४। १८)।

प्रयागका यह महत्त्व वास्तवमें उसे तीर्थराज-पदपर प्रतिष्ठित करनेवाला है। इस तीर्थकी पवित्रता मनुष्यको इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख प्रदान करनेवाली है। तीर्थराजका महत्त्व आज भी कम नहीं हुआ है, वरं उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता जाता है। आज भी अनेक तीर्थयात्री तीर्थराजके दर्शन-हेतु तथा त्रिवेणी-संगममें स्नान करनेके हेतु प्रयागकी ओर बढ़ते चले जाते हैं। इसीमें वे अपने जीवनको सार्थक समझते हैं। भारतका कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो 'तीर्थराज प्रयाग'के नामको सुनकर नतमस्तक नहीं हो जाता।

मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'जीवनका उद्देश्य क्या है ?' जिज्ञासा सच्ची हो तो वह अतृप्त नहीं रहती। भगवान्‌की सृष्टिका विधान है कि कोई भी अपनेको जिसका अधिकारी बना लेता है, उसे पानेसे वह वञ्चित नहीं रखा जाता।

'आत्मसाक्षात्कार या भगवत्प्राप्ति ?' उत्तर तो एक ही है। यही उत्तर उसे भी मिलना था और मिला—'यह तो तुम्हारे अधिकार एवं रुचिपर निर्भर करता है कि तुम किसको चुनोगे। यदि तुम मस्तिष्कप्रधान हो तो प्रथम और हृदयप्रधान हो तो द्वितीय।'

वह राजपूत है—सच्चा राजपूत और यह समझ लेना चाहिये कि सच्चा राजपूत लगनका सच्चा होता है। वह पीछे पैर रखना नहीं जानता—किसी क्षेत्रमें बढ़नेपर। सौभाग्यसे पिता साधुसेवी थे और सत्सङ्गने उसे सिखा दिया था कि संसारके भोग तथ्यहीन हैं, उनमें सुखकी खोज चावलके लिये तुस कूटने-जैसा है।

'परमार्थका मार्ग तो वह दिखला सकता है, जिसने स्वयं उसे देखा हो।' उसका निर्णय आप भ्रान्त तो नहीं कह सकते। कोई भी मार्ग वही दिखा-बता सकता है, जो उसपर चला हो। सुन-सुनाकर बतानेवाले भूल कर सकते हैं। किसीकी भूलसे जब पूरे जीवनके भटक जानेकी आशङ्का हो, ऐसा भय कौन आमन्त्रित करे। उसने निश्चय किया—'समर्थ स्वामी रामदासके श्रीचरण ही मेरे आश्रय हो सकते हैं।'

कहाँ ढूँढ़े वह श्रीसमर्थको। उन दिनों वे कहीं टिककर रहते नहीं थे। उन्होंने देश-भ्रमण प्रारम्भ कर दिया था। यह ठीक है कि वर्ष-दो-वर्षमें वे 'सातारा' आ जाते थे; किंतु जीवनके साथ जुआ तो नहीं खेला जा सकता। जीवन वर्ष-दो वर्ष रहेगा ही—मृत्यु कल ही धर नहीं दबायेगी, इसका आश्वासन ?

'स्वामी! मैं आपके समीपसे उठनेवाला नहीं हूँ!' उसने श्रीपवनकुमारके श्रीविग्रहके चरणोंके पास आसन लगाया। 'श्रीसमर्थ आपके हैं, मैं उन्हें कहाँ ढूँढ़ने जा सकता हूँ।'

बात सच थी, संत ढूँढ़नेसे मिलते होते तो देवर्षि नारद अपने भक्तिसूत्रमें न कहते—'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव।' किंतु उन्होंने ही यह भी तो कहा है—'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।'

श्रीमारुतिके चरणोंमें पहुँची आर्त पुकार कभी निष्फल नहीं लौटी है। इस बार भी उसे नहीं लौटना था। पता नहीं कहाँसे घूमते हुए श्रीसमर्थ आ पहुँचे और किसी ग्राम या नगरमें पहुँचनेपर वे पहले वहाँके श्रीमारुति-मन्दिरमें प्रणाम करने पहुँचेंगे, यह तो निश्चित ही रहता है।

'मैं तुम्हें ढूँढ़ने आया हूँ।' श्रीसमर्थने पवनकुमारको साष्टाङ्ग प्रणिपात किया और अपने पदोंमें प्रणत उस राजपूत युवकको उठा लिया।

'कृपामय न ढूँढ़े तो अज्ञ असमर्थ जन उन्हें कहाँ कैसे प्राप्त कर सकता है।' युवकके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे।

'तुम इस प्रकार यहाँ क्यों बैठे हो ?' समर्थकी ओज-पूर्ण वाणी गूँजी। 'तुम्हारे-जैसे समर्थ तरुणोंकी सेवा आज जनतारूपमें विद्यमान श्रीजनार्दन माँग रहे हैं।'

'मनुष्य-जीवन बार-बार प्राप्त नहीं होता, यह आप महापुरुषोंसे ही सुना है।' युवक अपनी जिज्ञासापर आ गया था। 'आप कृपा करें! यह जीवन आपकी कृपाकोर प्राप्त करके कृतकृत्य हो जायगा।'

'श्रीरघुवीर समर्थ अनन्त करुणावरुणालय हैं।' समर्थ स्वामी अभय दे रहे थे। 'कृपाकी क्या कृपणता है वहाँ! उनके श्रीचरणोंसे कृपाकी अजस्र स्रोतस्विनी त्रिभुवनको आप्लावित करती झर रही है। तुम अपनेको उन श्रीचरणोंमें अर्पित तो कर दो।'

× × ×

'मुझे आज्ञा दें प्रभु!' वह युवक अब एक आश्रमका मुख्य प्रबन्धक था। अब वह साधु है—समर्थका साधु। समर्थके साधुका अर्थ है—दीनोंका सेवक, रोगियोंका उपचारक एवं पीड़ितोंका मूर्तिमान् आश्वासन, किंतु वह स्वयं आज आर्त हो रहा है। श्रीसमर्थकी प्रतीक्षा कर रहा है वह

गत दो महीनोंसे और आज जब उसके गुरुदेव पधारे हैं, वह उनके श्रीचरणोंपर गिर पड़ा है।

'तुम बहुत उद्विग्न दीखते हो!' श्रीसमर्थने आसन स्वीकार कर लिया था।

'अपनेको अयोग्य पाता हूँ मैं इस आश्रमके लिये।' वह खुलकर रो पड़ा। 'श्रीचरण आज्ञा दें तो एकान्तमें कुछ दिन प्रयत्न करूँ।'

'कौन-सा प्रयत्न करोगे तुम!' समर्थ स्वामीके मुखपर स्मित आया—अपार वात्सल्यपूर्ण स्मित।

'मनकी चञ्चलताको रोकनेका प्रयत्न!' युवकने उत्तर दिया। 'श्रीचरणोंने ही आदेश किया था कि नैष्कर्म्यकी सिद्धि ही आत्मदर्शनका उपाय है।'

'उपाय नहीं—नैष्कर्म्यसिद्धि तथा आत्मदर्शन एक ही बात है।' श्रीसमर्थने संशोधन किया। 'किंतु नैष्कर्म्यका तुम सम्पादन कैसे करोगे? कर्मका त्याग करके?'

'यदि प्रभु आज्ञा दें!' युवकने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया। 'आश्रममें रहकर तो नित्य कार्यव्यग्र रहना ही पड़ता है।'

'एकान्तमें जाकर तुम श्वासक्रिया बंद कर दोगे?' समर्थ समझानेके स्वरमें बोल रहे थे। 'आहार एवं जल भी तथा शरीरस्थ यन्त्रोंकी क्रियाओंको भी? यदि यह कर भी लो तो उस पत्थरमें और तुममें अन्तर क्या होगा?'

'प्रभु!' युवक अपने मार्गद्रष्टाके चरणोंपर गिर पड़ा। उसे लगा कि कोई घने अन्धकारका पर्दा उसके सम्मुख पड़ा था और अब वह उठने ही जा रहा है।

'आत्मतत्त्व अक्रिय है। उसकी अनुभूति—समस्त क्रियाशीलताके मूलमें जो एक निष्क्रिय सत्ता है, जिसमें क्रिया आरोपितमात्र है, उससे एकत्वका अनुभव।'

सहसा श्रीसमर्थ रुक गये। उन्होंने देखा कि उनका यह अनुगत इस पद्धतिको हृदयंगम नहीं कर पा रहा है। उन्होंने दिशा बदली—'क्रियाके संचालक एवं उसके फलके दाता-भोक्ता श्रीरघुवीर हैं। हम-तुम सब उन समर्थके हाथके यन्त्र हैं। हमें उनके चरणोंमें अपने-आपको पूर्णतया अर्पण कर देना है।'

'श्रीचरणोंमें मैंने अपनेको उसी दिन अर्पित कर दिया।' युवकके स्वरमें विश्वास था।

'यन्त्र तो नित्य निष्क्रिय है। उसकी क्रिया तो संचालक-की क्रिया है।' श्रीसमर्थने वह अज्ञानकी अन्धयवनिका उठा दी। 'सचमुच तुमने अपनेको अर्पित कर दिया है तो नैष्कर्म्य स्वतः प्राप्त है। मनके चाञ्चल्यके निग्रहके कर्ता बननेकी इच्छा तुममें क्यों आती है?'

'यह अशान्ति—उस आनन्दघनकी अनुभूति जो नहीं पा रहा हूँ।' बात सच है। यदि आन्तरिक शान्ति और आनन्द नहीं मिलता तो अवश्य हमसे भूल हो रही है, हमारे साधनमें कहीं त्रुटि है।

'अपनेको कर्ता मानना छोड़ दिया होता तुमने!' वह त्रुटि जो स्वयं साधक नहीं पकड़ पाता, उसका मार्गद्रष्टा सहज पकड़ लेता है। श्रीसमर्थसे वह त्रुटि छिपी नहीं रह सकती थी। 'कोई पीड़ित नहीं, कोई रोगी नहीं, कोई संतप्त नहीं। तुम न उद्धारक हो, न सहायक। इन रूपोंमें आनन्दघन श्रीरघुवीर तुम्हारी सेवा लेने आते हैं तुमपर कृपा करके। उनकी सेवा करके तुम कृतार्थ होते हो।'

युवकने भूमिपर मस्तक रखा और उसके वे गुरुदेव उठ खड़े हुए। उन्हें अब प्रस्थान करना था।

× × ×

'तुम जा सकते हो, यदि तुम्हें एकान्तमें जानेकी आवश्यकता प्रतीत होती हो!' श्रीसमर्थ स्वामी रामदास जब दूसरी बार उस आश्रमपर लौटे, स्वागत-सत्कार समाप्त हो जानेपर अपने चरणोंके पास बैठे आश्रमके प्रधानकी ओर उन्होंने सस्मित देखा।

'मुझसे कोई अपराध हो गया?' प्रधानने मस्तक रखा श्रीचरणोंपर। अन्य आश्रमस्थ साधु सशङ्क हो उठे। उनके निष्पाप प्रधानने ऐसा क्या किया कि उन्हें दण्ड प्राप्त हो? किसी अपने चरणाश्रित साधुको समर्थ स्वामी आश्रमसे पृथक् होकर एकान्त-सेवनका आदेश तभी देते हैं, जब वह कोई अक्षम्य अपराध करता है। यह तो उनका सबसे बड़ा दण्ड है।

'अपराधकी बात मैं नहीं कहता!' समर्थ स्वामी प्रसन्न थे। 'यह तो तुम्हारी आवश्यकताकी बात है। आन्तरिक शान्ति एवं निरपेक्ष आनन्दकी उपलब्धिके लिये यदि तुम्हें एकान्तकी आवश्यकता प्रतीत होती हो·····।'

'श्रीचरणोंको छोड़कर मेरी और कोई आवश्यकता कभी न बने!' आश्रमके प्रधानका स्वर भाव-विह्वल हुआ।

'अज्ञानी आश्रितसे त्रुटि होती ही है और दयाधाम शरण्य उसे क्षमा करते हैं। सेवकको सेवाका प्रभुने सौभाग्य दे रखा है, उसे आनन्दका अभाव कैसे हो सकता है।'

'यही कहने इस वार मैं आया हूँ।' समर्थ रामदास स्वामीने एक दृष्टि समस्त शिष्यवर्गपर डाली। 'जो इस विश्वका निर्माता, संचालक एवं संरक्षक है, वह न दुर्बल है न असमर्थ। उसे हमारी सेवाकी आवश्यकता नहीं है। यह झूठा अहंकार है कि हम किसीकी सेवा करेंगे या हम लोकोपकार करेंगे।'

'तब हमारा यह आश्रम.......।' एक नवीन साधु कुछ कहना चाहता था; किंतु स्वयं उसे अपनी भूल ज्ञात हो गयी। समर्थ स्वामी बोलते जा रहे थे—

'उन प्रभुने हमें अपनी सेवा प्रदान की, यह उनकी कृपा। प्रत्येक जीवपर उनकी यह अहैतुकी कृपा है। सबको उन्होंने एक कार्य देकर यहाँ भेजा है और यदि अपने कार्यका वह ठीक सम्पादन करता है तो सर्वेशकी आराधना करता है। इसी आराधनासे वह उनकी प्राप्ति करता है।'

हमारा कर्तव्य

'अवश्य प्रत्येकको इसे समझनेमें कठिनाई होती है।' समर्थकी अमृतवाणी प्रवाहित होती रही। 'किंतु तुम्हें क्यों कठिनाई होनी चाहिये? तुममें बल है, शौर्य है, शस्त्रचालनकी निपुणता है। ये साधन तुम्हें समर्थ श्रीरघुवीरने दिये हैं। आसपास जो आर्त, अत्याचार-पीड़ित हैं, उनकी पुकार—वह प्रभुकी पुकार तुम्हारा कर्तव्य-निर्देश करती है।'

'कर्म करनेके तुम्हें साधन मिले हैं—अतः उनका उपयोग करो।' उपदेशका उपसंहार हुआ। 'कर्मका त्याग अर्थात् अकर्ममें आसक्ति करके तो तुम अपनेको उस सर्वात्माकी सेवासे वञ्चित कर लोगे।'

भगवान्की अनुभूति प्रतिक्षण मुझमें नयी आशा भर रही है

मैं भगवान्के प्रेमविधानकी छायामें हूँ। अतः मैं असफल होनेपर भी पुनः प्रयत्न करनेके योग्य हूँ। जब बार-बार प्रयत्न करनेपर असफलता ही हाथ लगती है, निराशा-ही-निराशा चारों ओरसे घिरी आती है, ऐसा लगता है कि अब मैं किसी 'शुभ'के दर्शन नहीं कर पाऊँगा—उस समय भी यह विश्वास कि भगवान्का प्रेमपूर्ण मङ्गलविधान मुझमें तथा मेरे माध्यमद्वारा सक्रिय है और वह असफलताके अन्धकारको छिन्न-भिन्नकर सुव्यवस्था, शान्ति, आनन्द एवं सफलताकी प्रतिष्ठा कर रहा है, मुझे आशावान् बनाता और मैं शक्ति बटोरकर पुनः उठ बैठता हूँ।

मैं इस विचारको हृदयमें घर नहीं करने देता कि 'मैं असफल हूँ' और 'मेरा जीवन निरर्थक है'। मैं इस सत्यका स्मरण करता हूँ कि 'मैं' भगवान्की प्यारी संतान हूँ, भगवान् मुझे प्यार करते हैं और उन्होंने अपने कार्यकी पूर्तिके लिये, अपने प्रेमकी अभिव्यक्तिके लिये मेरी रचना की है।'

इस क्षणसे पूर्व क्या-क्या असफलताएँ जीवनमें रही हैं, इसका विचार छोड़कर मैं पूर्ण उत्साह, पूर्ण तत्परता और पूर्ण लगनके साथ पुनः कार्यमें प्रवृत्त हो जाता हूँ।

भगवान्के प्रेमके बलपर मैं पुनः अपने जीवनका निर्माण कर सकता हूँ; असफलताको सफलतामें, निराशाको आशामें, दुःखको सुखमें, अशान्तिको शान्तिमें, खिन्नताको प्रसन्नतामें, विषादको आनन्दमें, पश्चात्तापको उल्लासमें परिणत करनेमें समर्थ हूँ।

मैं निरन्तर असफल होते हुए भी पुनः प्रयत्नशील होता हूँ; क्योंकि भगवान् सदा मेरे साथ हैं और उनका प्रेम मुझे आशावान् बना रहा है।

भगवान्की अनुभूति प्रतिक्षण मुझमें नयी आशा भर रही है।

सर्वधर्मपरित्यागका रहस्य

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(गीता १८ । ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।'

इस श्लोकमें भगवान्ने अर्जुनसे ये चार बातें कही हैं—

(१) तू सम्पूर्ण धर्मोंका मुझमें त्याग कर दे।
(२) तू केवल एक मेरी ही शरणमें आ जा।
(३) मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा।
(४) तू शोक मत कर।

अब यहाँ इनमेंसे प्रत्येकपर क्रमशः विचार किया जाता है।

१. तू सम्पूर्ण धर्मोंका मुझमें त्याग कर दे

यहाँ 'सर्वधर्मान्परित्यज्य'का अर्थ 'सब धर्मोंका आश्रय छोड़कर' किया जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं; क्योंकि भगवान्ने गीता ६। १ में 'अनाश्रितः कर्मफलम्' कहकर यह आदेश दिया ही है। किंतु इस प्रकरणमें उससे और भी विशेषता है। १८ वें अध्यायके ५६ वें श्लोकमें भगवान् कहते हैं कि 'मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी पदको प्राप्त हो जाता है।' इस प्रकार यहाँसे शरणागतिका प्रकरण प्रारम्भ करके भगवान् ५७ वें श्लोकमें मुख्यतया अर्जुनको आज्ञा देते हैं—'अर्जुन! तू सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धि-रूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो।' अतः इस प्रकरणके अनुसार 'सर्वधर्म' का अर्थ है 'सम्पूर्ण शास्त्रविहित कर्म' और 'परित्यज्य' का अर्थ है उन सब कर्मोंको सब ओरसे (अच्छी प्रकार) भगवान्में अर्पण करके। सब ओरसे सब कर्मोंको भगवान्में अर्पण करनेकी विधि गीता ९। २७ में बतलायी गयी है, जिसका फल ९। २८ में भगवान्की प्राप्ति होना बतलाया गया है। इसलिये १८। ५७ के कथनानुसार 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' का अर्थ 'सब शास्त्रविहित कर्मोंको भगवान्में अर्पण करना' अधिक युक्तिसंगत है।

कितने ही विद्वानोंका कथन है कि 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' कहकर भगवान्ने स्वरूपसे समस्त धर्मोंका त्याग बतलाया है। किंतु ऐसा अर्थ युक्तिसंगत नहीं है; क्योंकि अर्जुनने भगवान्की आज्ञासे युद्ध ही किया, सर्वथा स्वरूपसे कर्मोंका त्याग नहीं किया। दूसरे महानुभाव कहते हैं कि 'अपने कर्तव्य-कर्मोंको करता हुआ उसमें अकर्तृत्वबुद्धि रखे'—यही इस पदका आशय है। पर यह भी ठीक नहीं; क्योंकि ऐसा कथन ज्ञानयोग (सांख्ययोग) की दृष्टिसे सम्भव है, किंतु यहाँ प्रकरण भक्तियोगका है। कारण, भगवान्ने इससे पूर्व १८। ६५ में यह स्पष्ट कहा है कि 'तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर।'

२. तू केवल एक मेरी ही शरणमें आ जा

एक भगवान्की शरणमें जाना क्या है? भगवान्ने अर्जुनको १८। ६५ में जो आदेश दिया है, वही शरणका प्रकार है; क्योंकि यहाँ 'शरण' का वही अर्थ लेना चाहिये, जो भगवान्ने गीतामें लिया हो। गीता ९। ३२ में भगवान् कहते हैं—'अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।' यहाँ

भगवान्ने शरणका महत्त्व और फल तो कहा, किंतु शरणका खरूप नहीं बतलाया । अतः ९ । ३४ में शरणका खरूप बतलाते हुए शरण आनेके लिये अर्जुनको आदेश देते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

'मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर । इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा ।'

ठीक यही आधा श्लोक १८ । ६५ में ज्यों-का-त्यों है । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि १८ । ६५ में अनन्य-शरणका खरूप बतलाकर १८ । ६६ में भगवान्ने अपनी शरणमें आनेके लिये अर्जुनको आदेश दिया है ।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि १८।६५ में जो बात कही गयी है, वह अनन्यभक्तिकी है या अनन्यशरणकी ? इसका उत्तर यह है कि अनन्यभक्ति और अनन्यशरण एक ही वस्तु है; क्योंकि गीतामें जहाँ अनन्यभक्तिका खरूप बतलाया गया है, वहाँ शरण उसके अन्तर्गत आ जाती है और जहाँ शरणका वर्णन है, वहाँ अनन्य-भक्ति उसके अन्तर्गत आ जाती है । जैसे गीता ११ । ५४ में अनन्यभक्तिका माहात्म्य बतलाकर ५५ में उसका खरूप बतलाते हुए यही कहा है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

'हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है, वह अनन्य भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है ।'

यहाँ 'अनन्यभक्ति' का वर्णन करते हुए जो 'मत्परमः'—'मेरे परायण' कहा गया है, इससे शरणागतिके भावको भक्तिके अन्तर्गत बतलाया गया है ।

इसी प्रकार ९ । ३४ में 'अनन्यशरण' का खरूप बतलाते हुए भगवान्ने 'मद्भक्तः' कहकर भक्तिको शरणागतिके अन्तर्गत कह दिया है । अतएव अनन्यभक्ति और अनन्यशरण एक ही वस्तु हैं ।

यह अनन्यशरणका विषय बहुत ही गोपनीय है । इसलिये यह भगवान्के परम रहस्यकी बात भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुन-जैसे परम अधिकारी प्रेमी भक्तको ही कही गयी है तथा इसे अपात्रको बतलानेके लिये भगवान्ने निषेध किया है (गीता १८ । ६७) । एवं पात्रको कहनेके लिये प्रेरणा करते हुए उसको बतलानेका फल और उसकी महिमाका वर्णन भी किया है (गीता १८ । ६८-६९) ।

इसके सिवा भगवान्ने गीतामें जो कुछ भी आदेश दिया है, उसका पालन करना भी भगवान्की अनन्य-शरण है; क्योंकि गीता २ । ७ में अर्जुनने भगवान्के शरण होकर अपना कर्तव्य पूछा, उसपर भगवान्ने अर्जुनको निमित्त बनाकर सारे संसारके हितके लिये गीता-शास्त्रका वर्णन किया । उपदेश देनेके पश्चात् वे अर्जुनसे पूछते हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥
(गीता १८ । ७२)

'हे पार्थ ! क्या इस (गीता-शास्त्र) को तूने एकाग्रचित्तसे श्रवण किया ? और हे धनंजय ! क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया ?'

इसके उत्तरमें अर्जुनने कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥
(गीता १८ । ७३)

'हे अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है; अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।'

गीता २ । ७ में अर्जुनने जो कहा था कि मैं किंकर्तव्यविमूढ हो गया हूँ, उसीको लक्ष्य कराते हुए अब यहाँ वे कहते हैं—'नष्टो मोहः' मैं अब किंकर्तव्यविमूढ नहीं हूँ, मेरा वह मोह दूर हो गया है।

भगवान्ने पूछा था—'तुमने मेरा उपदेश एकाग्रचित्त होकर सुना है न ?' इसपर अर्जुन कहते हैं—'स्मृतिर्लब्धा'—मैंने सब उपदेश सुना है और वह सब मुझे याद है । किंतु 'त्वत्प्रसादात्'—यह सब मेरी महत्ता नहीं है, आपकी कृपाका प्रसाद है।

भगवान्ने ४ । ४२ में अर्जुनसे कहा था कि 'तू हृदयमें स्थित इस अज्ञानजनित अपने संशयका विवेकज्ञानरूप तलवारद्वारा छेदन करके समत्वरूप कर्मयोगमें स्थित हो जा और युद्धके लिये खड़ा हो।' उसीका संकेत करते हुए अर्जुन यहाँ कहते हैं—'स्थितोऽस्मि गतसंदेहः' तथा 'करिष्ये वचनं तव। 'मैं अब उस संशयसे रहित हो गया हूँ,' एवम् 'अब आप जो कुछ कहेंगे, वही करूँगा।' इस प्रकार अर्जुनने उत्तर देकर भगवान्ने जैसा कहा था, वैसा ही किया।

इस विषयमें हमें महाभारतके कर्ण-वध-प्रसङ्गपर ध्यान देना चाहिये । जब वीर कर्णके रथका पहिया पृथ्वीमें धँस गया, तब वह तुरंत रथसे उतर पड़ा और अपनी दोनों भुजाओंसे पहियेको ऊपर उठानेका प्रयत्न करने लगा । उस समय उसने अर्जुनकी ओर देखकर कहा—'महाधनुर्धर कुन्तीकुमार ! दो घड़ी प्रतीक्षा करो, जिससे मैं इस फँसे हुए पहियेको पृथ्वीतलसे निकाल लूँ । अर्जुन ! जो केश खोलकर खड़ा हो, युद्धसे मुँह मोड़ चुका हो, ब्राह्मण हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, हथियार डाल चुका हो, प्राणोंकी भीख माँगता हो, जिसके बाण, कवच और दूसरे-दूसरे आयुध नष्ट हो गये हों, ऐसे पुरुषपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शूरवीर शस्त्रोंका प्रहार नहीं करते । पाण्डुनन्दन ! तुम लोकमें महान् शूरवीर और सदाचारी माने जाते हो । युद्धके धर्मोंको जानते हो । वेदान्तका अध्ययनरूपी यज्ञ समाप्त करके तुम उसमें अवभृथ-स्नान कर चुके हो । तुम्हें दिव्यास्त्रोंका ज्ञान है । तुम अमेय आत्मबलसे सम्पन्न तथा कार्तवीर्य अर्जुनके समान पराक्रमी हो । अतः महाबाहो ! जबतक मैं इस फँसे हुए पहियेको निकाल रहा हूँ, तबतक तुम रथारूढ़ होकर भी मुझ भूमिपर खड़े हुएको बाणोंकी मारसे व्याकुल मत करो, क्योंकि यह धर्म नहीं है।'*

तब रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने कर्णसे कहा—'राधानन्दन ! सौभाग्यकी बात है कि अब यहाँ तुम्हें धर्मकी बात याद आ रही है । प्रायः यह देखनेमें आता है कि नीच मनुष्य विपत्तिमें पड़नेपर दैवकी ही निन्दा करते हैं, अपने किये हुए कुकर्मोंकी नहीं। कर्ण ! जब वनवासका तेरहवाँ वर्ष बीत जानेपर भी तुमने पाण्डवोंका राज्य उन्हें वापस नहीं दिया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?† जब तुमलोगोंने भीमसेनको जहर मिलाया हुआ अन्न खिलाया और उन्हें सर्पोंसे डँसवाया था, लाक्षाभवनमें सोये हुए कुन्तीकुमारोंको जब तुमने जलानेका प्रयत्न कराया था, रजस्वला द्रौपदीको भरी सभामें बुलवाकर जब तुमने उसका उपहास किया और उसकी ओर निकटसे देखा था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? एवं जब युद्धमें तुम बहुत-से महारथियोंने मिलकर बालक अभिमन्युको चारों ओरसे घेरकर मार डाला था, उस समय

* देखिये महाभारत कर्णपर्व अ० ९० ।

† वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे ।
न प्रयच्छसि यद् राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥
(महा० कर्ण० ९१ । ४)

तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? * यदि उन अवसरोंपर यह धर्म नहीं था तो आज भी यहाँ सर्वथा धर्मकी दुहाई देकर तालु सुखानेसे क्या लाभ ? सूत ! अब तुम यहाँ धर्मके कितने ही कार्य क्यों न कर डालो, जीते-जी तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता ।'

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी बातोंको सुनकर कर्णने लज्जासे अपना सिर झुका लिया । उससे कुछ भी उत्तर देते नहीं बना । उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! कर्ण जबतक रथपर नहीं चढ़ जाता तबतक ही अपने बाणद्वारा उसका मस्तक काट डालो ।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनने भगवान्‌की उस आज्ञाको सादर शिरोधार्य किया और महान् दिव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित अञ्जलिक नामक उत्तम बाणके द्वारा कर्णका सिर काट डाला ।† यद्यपि उस समय शस्त्र-रहित पृथ्वीपर खड़े हुए कर्णके धर्मयुक्त वचनोंको सुनकर अर्जुन बाण चलानेमें हिंचकिचा रहा था; फिर भी भगवान्‌के वचनोंको सुनकर उसका सारा संकोच और संदेह निवृत्त हो गया, जिससे उसने निःशङ्क होकर कर्णपर बाणका प्रहार करके उसका सिर काट गिराया ।‡

* यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः ।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥
(महा० कर्ण० ९१ । ११)

† देखिये महाभारत, कर्णपर्व, अध्याय ९१ ।

‡ वास्तवमें अर्जुनका कर्णपर बाण चलाना अधर्म नहीं था, क्योंकि आततायीको किसी प्रकार भी मारना धर्मशास्त्रमें न्याय्य बताया गया है और कर्ण आततायी था ।

वशिष्ठस्मृतिमें आततायीके लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं—

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदारापहर्ता च षडेते ह्याततायिनः ॥
(३ । १९)

'आग लगानेवाला, विष देनेवाला, हाथमें शस्त्र लेकर मारनेको उद्यत, धन हरण करनेवाला, जमीन छीननेवाला और स्त्रीका हरण करनेवाला—ये छहों आततायी हैं ।'

तथा मनुस्मृतिमें बतलाया है—

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥
(मनु० ८ । ३५०-३५१)

'अपना अनिष्ट करनेके लिये आते हुए आततायीको बिना विचारे ही मार डालना चाहिये । आततायीके मारनेसे मारनेवालेको कुछ भी दोष नहीं लगता ।'

इसी प्रकार प्रत्येक भक्तका कर्तव्य भगवदाज्ञा-पालन ही है । इसीका नाम भगवच्छरणागति है । भगवदाज्ञाके सामने अन्य किसी धर्मको न मानना 'सर्वधर्मपरित्याग' है । ईश्वराज्ञा और धर्मशास्त्रमें विरोध-सा प्रतीत होनेपर भगवदाज्ञा ही मुख्य माननीय है; क्योंकि धर्मका तत्त्व गहन है, साधारण पुरुष उसका निर्णय नहीं कर सकता ।

भगवान्‌की शरण जाना—यह उत्तम रहस्यकी बात है, जिसे भगवान्‌ने अर्जुन-जैसे परमभक्तके प्रति ही कहा है । भगवान् उसकी महिमा बतलाते हुए स्वयं कहते हैं—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥
(१८ । ६४)

'सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्य-युक्त वचनको तू फिर भी सुन । तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा ।'

गीतामें भगवान्‌ने गुह्य, गुह्यतर और सर्वगुह्यतम—इस तरह तीन प्रकारकी बातें बतलायी हैं । दूसरे अध्यायके ४० वें श्लोकसे आरम्भ करके तीसरे अध्याय-के अन्ततक जिस कर्मयोगका वर्णन किया है, उसको भगवान्‌ने 'गुह्य' उपदेश बतलाया है । वे कहते हैं—

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥
(गीता ४ । ३)

'तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग (जिसको मैंने सृष्टिके आदिमें सूर्यसे कहा था, किंतु जो बहुत कालसे पृथ्वीलोकमें लुप्तप्राय हो गया था) आज मैंने तुमसे कहा है; क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है।'

इससे यह सिद्ध हुआ कि कर्मयोगका विषय उत्तम होते हुए भी 'गुह्य' (गोपनीय) ही है; किंतु ईश्वरकी भक्ति 'गुह्यतर' है, जिसका वर्णन भगवान्‌ने १८। ६२-६३ में किया है। वहाँ 'गुह्य'—कर्मयोगसे ईश्वर-भक्तिको 'गुह्यतर' बतलाया गया है।

इसपर यह प्रश्न होता है कि जब ईश्वरकी भक्तिको 'गुह्यतर' कह दिया, तब १८। ६६ में भी ईश्वर-की भक्तिका ही वर्णन है, फिर उसमें सर्वगुह्यतमत्व क्या है? इसका उत्तर यह है कि वहाँ भगवान्‌का 'वह ईश्वर मैं ही हूँ' इस रहस्यमय बातको प्रकट करके यह कह देना कि तू एक मेरी ही शरणमें आ जा—यही 'सर्वगुह्यतमत्व' है। यदि कहें कि जब यही कथन सर्वगुह्यतम है तो ९। ३४ के पूर्वार्द्धमें भी तो यही बात कही गयी है; फिर वहाँ उसे सर्वगुह्यतम क्यों नहीं बतलाया, तो इसका उत्तर यह है कि वहाँ भी उसे 'गुह्यतम' और 'राजगुह्य' कहकर 'सर्वगुह्यतम' ही बतलाया गया है। भगवान्‌ने कहा है—

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥
(गीता ९। १-२)

'तुझ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञानको पुनः भलीभाँति कहूँगा, जिसे जानकर तू दुःखरूप संसारसे मुक्त हो जायगा। यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयों-का राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।'

इस प्रकार नवें अध्यायमें वर्णित उपदेशको, जिसके उपसंहार (९। ३४) में शरणागतिका आदेश है, परम गोपनीय और सब विद्याओंका राजा बतलाया गया है। इसलिये वह सर्वगुह्यतम उपदेश है।

यहाँ एक बात और ध्यान देनेकी है। भगवान्‌ने १८। ६१ में ईश्वरकी व्यापकताका तत्त्व बतलाकर ६२ में उसकी शरणमें जानेकी बात कही और ६३ में 'इति ते ज्ञानमाख्यातम्' अर्थात् यह 'ज्ञान' मैंने तुझसे कह दिया'—इस प्रकार इसका नाम 'ज्ञान' बतलाया। इसमें केवल निराकारकी शरणागतिका विषय है, इसलिये इसे केवल ज्ञान और 'गुह्यतर' ही कहा है। किंतु नवें अध्यायमें वर्णित उपदेशको 'विज्ञानसहित ज्ञान' और 'सर्वगुह्यतम' बतलाया गया है। वहाँ प्रथम श्लोकमें विज्ञान-सहित ज्ञान कहनेकी प्रतिज्ञा करके ९। ४ में निराकार-का, ९। २६ में साकारका और ९। १८ में निरा-कार-साकार सर्वरूपका वर्णन करते हुए यह कहा गया कि वह सब मेरा ही स्वरूप है। इसी प्रकार सातवें अध्यायके प्रथम श्लोकमें समग्र स्वरूपका वर्णन सुननेके लिये कह-कर भगवान्‌ने अपने परम प्रेमी भक्त अर्जुनके प्रति दूसरे श्लोकमें यही कहा कि 'मैं तेरे लिये इस विज्ञान-सहित तत्त्वज्ञानको सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ जाननेयोग्य शेष नहीं रह जाता।' फिर १९ वें श्लोकमें 'सब कुछ वासुदेव ही है।' इस समग्ररूपको जाननेवाले महात्माको अतिदुर्लभ बतलाया एवं अन्तमें समग्ररूपकी उपासनाका वर्णन करते हुए कहा कि 'जो पुरुष अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञके सहित मुझे जानते हैं, वे मुझको प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण—सब कुछ मैं ही हूँ।' इसीको 'विज्ञानसहित ज्ञान' कहा गया। अतएव

यह सिद्ध हुआ कि सगुण-निर्गुण साकार-निराकाररूप समग्र भगवान्‌का ज्ञान ही 'विज्ञानसहित ज्ञान' है और इस विज्ञानसहित ज्ञानको जानकर उनकी सब प्रकारसे शरण ग्रहण करना ही 'सर्वगुह्यतम' है।

यहाँ १८।६४ में 'मे परमं वचः भूयः शृणु—' 'मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तू फिर भी सुन' यों कहकर भी भगवान्‌ने यही अभिप्राय व्यक्त किया है कि मैंने नवें अध्यायमें जो बात कही थी, उसी परम रहस्यमयी बातको मैं फिर तुमसे कहता हूँ। तथा 'मे दृढं इष्टः असि', 'तू मेरा अतिशय प्रिय है'—यों कहकर यह बतलाया है कि तू मेरा अत्यन्त प्यारा भक्त है, अतः तू अधिकारी पुरुष है। वहाँ नवें अध्यायके प्रथम श्लोकमें भी 'अनसूयवे' कहकर यह स्पष्ट कर दिया था कि तुम्हारी मेरे गुणोंमें दोषदृष्टि नहीं है। अतः तुम अधिकारी पुरुष हो। ऐसे परम-प्रेमी अधिकारी भक्त अर्जुनसे ही भगवान् यह सर्वगुह्यतम रहस्य कहते हैं कि 'तुम एक मेरी ही शरणमें आ जाओ।'

३. मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा

अर्जुनने पहले अध्यायमें कहा था कि 'जनार्दन! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियोंको मारकर तो हमें पाप ही लगेगा (१। ३६।) तथा यह बड़े ही आश्चर्य और शोकका विषय है कि हमलोग बुद्धिमान् होकर भी महान् पाप करनेको तैयार हो गये हैं, जो राज्य और सुखके लोभसे स्वजनोंको मारनेके लिये उद्यत हो गये हैं (१।४५)।' 'इस प्रकार अर्जुनके मनमें जो पाप लगनेकी आशङ्का थी, उसकी निवृत्तिके लिये ही भगवान्‌ने २। ३८ में यह कहा था कि 'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समझकर उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा। इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।'

अब भगवान् यहाँ १८। ६६ में कहते हैं कि यदि तू पाप मानता है तो तू सब धर्मोंका मुझमें त्याग करके मेरी शरणमें आ जा, मैं गारंटी देता हूँ कि तू जिन-जिन कर्मोंमें पाप मानता है, उन सभी पापोंसे मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा।

४. तू शोक मत कर

मोहके कारण अर्जुनको बन्धु-बान्धवोंके वध करनेके विषयमें शोक हो रहा था, उसीकी निवृत्तिके लिये भगवान्‌ने दूसरे अध्यायमें उसको उपदेश दिया। वहाँ भगवान्‌ने कहा—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥
(गीता २। ११)

'अर्जुन! तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंकी-सी बातें कहता है; परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।'

यदि तू इन सबके शरीरोंकी ओर विचार करके शोक करता है तो उन शरीरोंके लिये शोक करना उचित नहीं है; क्योंकि—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥
(गीता २। २८)

'अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, केवल बीचमें ही प्रकट हैं; ऐसी स्थितिमें शोक क्या करना है।'

अतः स्वभावतः नाशवान् होनेके कारण शरीरोंके लिये शोक करना व्यर्थ है। यदि आत्माकी दृष्टिसे विचार करें, तो भी शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
(गीता २। २०)

'यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है, न मरता है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।'

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥
(गीता २। २४-२५)

'क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसंदेह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है, यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है, इससे हे अर्जुन! इस आत्माको उपर्युक्त प्रकारसे जानकर तू शोक करने योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है।'

अतः आत्माके लिये भी शोक करना सर्वथा अयुक्त है, यही उपदेश भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने ताराको दिया था—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥

इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि शरीर या आत्मा, किसीके लिये भी शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि तू कहे कि शरीरसे आत्माका वियोग होनेके विषयमें मैं शोक करता हूँ तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(गीता २। २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।'

यदि कहें कि पुराने वस्त्रोंके त्याग और नये वस्त्रोंके धारण करनेमें तो मनुष्यको सुख होता है, किंतु पुराने शरीरके त्याग और नये शरीरके ग्रहण करनेमें तो क्लेश होता है, अतः यहाँ यह उदाहरण समीचीन नहीं है, तो इसका उत्तर यह है कि पुराने शरीरके त्याग और नये शरीरके ग्रहणमें यानी मृत्यु और जन्ममें अज्ञानी मनुष्यको ही दुःख होता है और अज्ञानी तो बालकके समान है। धीर, विवेकी और भक्तको शरीर-परित्यागमें दुःख नहीं होता। भगवान्‌ने कहा है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥
(गीता २। १३)

'जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, ज़वानी और वृद्धावस्था होती हैं, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता।'

श्रीरामचरितमानसमें भी लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें दृढ़ प्रीति करके वालीने उसी प्रकार देहका त्याग कर दिया था, जैसे हाथी अपने गलेसे फूलकी मालाका त्याग कर देता है यानी मृत्युके दुःखका उसे पता ही नहीं लगा—

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥

पुराने वस्त्रोंके त्याग और नये वस्त्रोंके धारण करनेमें भी हर्ष उन्हींको होता है, जो नये-पुराने वस्त्रके तत्त्वको जानते हैं। छः महीने या सालभरके बच्चेकी मा जब

उसके पुराने गंदे वस्त्रको उतारती है, तब वह बालक रोता है और नया स्वच्छ वस्त्र पहनाती है, तब भी वह रोता है। किंतु माता उसके रोनेकी परवा न करके उसके हितके लिये वस्त्र बदल ही देती है। इसी प्रकार भगवान् भी जीवके हितके लिये उसके रोनेकी परवा न करके उसकी देहको बदल देते हैं। अतः यह उदाहरण यहाँ समीचीन है।

इस प्रकार भगवान्ने बतलाया कि शरीर, आत्मा या शरीरसे आत्माके वियोग—किसीके लिये भी शोक करना उचित नहीं। दूसरे अध्यायके इन्हीं वचनोंका संकेत करके भगवान्ने यहाँ १८। ६६ में अपने प्रभावका दिग्दर्शन कराते हुए अर्जुनको सर्वथा शोक-रहित हो जानेके लिये आश्वासन दिया है कि 'तू शोक मत कर।'

सोया-ही-सोया

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

बचपनमें संतान बना असहायावस्थामें माँ-बापकी गोदमें सोया।

तनिक बड़ा हुआ तो भाई-बहन बनकर निर्मल स्नेहकी गलबहियाँ डालकर सोया।

यौवन आया तो अरमानोंकी दुनिया बसाकर—उसमें पति-पत्नी बनकर सोया—सोया सो खोया।

फिर माता-पिता बनकर पुत्र-पुत्रियोंको दुलराते-मल्हराते उनके साथ सोया।

जरा आयी तो मोहमें जकड़-बंद होकर नाती-पोतोंसे चिपटकर—उन्हें चिपटाकर सोया।

जराकी जर्जरतामें, मोहान्धताकी सीमापर पहुँचकर जिस-किसीको—जिस कुछको भी अपना समझा, उसी-से चिपक-चिपककर सोया।

जीते-जी चिल्ल-पों मचाते मायाकी छल-छाँहमें सोया।
मरा तो मरघटकी मर्मवेधी निस्तब्धतामें सोया।
उम्रभर सोया-ही-सोया।

फलतः लेखा-जोखा देते समय फूट-फूटकर रोया। पर निष्फल!

चिड़ियोंके खेत चुग लेनेपर पीछे पछतानेसे क्या होता है?

मानव-जीवनकी यही कहानी है, नित्य-नूतन रहते हुए भी नितान्त पुरानी है।

और यह कहानी कितनी करुण है। यह दशा कितनी दयनीय है। यह स्थिति कितनी भयावह है ....असह्य है!

काश मानव जागता........समयपर जागता।
उसकी दुनिया बदल जाती तब।
जागरण-कालकी बात छोड़ो।

समयानुसार सोना भी तब सोना न रहकर, रोना न बनकर सचमुचका सोना होता—बनता.........खरा पासेका सोना!

पर मानव जागता, तब न!

श्रीभगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते हैं और दूसरोंसे करवाते हैं।

बड़े ही हर्षकी बात है कि 'कल्याण'में प्रकाशित प्रार्थनाके अनुसार भगवत्प्रेमी पाठक-पाठिकाओंने गतवर्ष बहुत ही उत्साहके साथ नाम-जप स्वयं करके तथा दूसरोंसे करवाके महान् पुण्यका सम्पादन किया है। उनके इस उत्साहका पता इसीसे लगता है कि पिछले वर्ष जहाँ केवल ९३८ स्थानोंसे जपकी सूचना आयी दर्ज हुई थी, वहाँ इस वर्ष ११३७ स्थानोंकी सूचना दर्ज हुई है। और मन्त्र-जप जहाँ गतवर्ष लगभग २७ करोड़ हुआ था, वहाँ इस वर्ष ३३ करोड़से कुछ ऊपर हुआ है (जो निम्नलिखित आँकड़ोंसे प्रकट है), यद्यपि हमने प्रार्थना केवल २० करोड़के लिये ही की थी। इसके लिये हम उन सबके हृदयसे ऋणी हैं।

(१) केवल भारतमें ही नहीं, बाहर विदेशोंमें भी जप हुआ है।

(२) केवल सोलह नामके महामन्त्रकी जप-संख्या जोड़ी गयी है। भगवान्‌के अन्यान्य नामोंका भी जप हुआ है, वह इस संख्यासे पृथक् है।

(३) बहुत-से भाई-बहिनोंने जप अधिक किया है, सूचना कम भेजी है और कुछ नाम-प्रेमियोंने तो केवल जपकी सूचना दी है, संख्या लिखी ही नहीं।

(४) बहुत-से भाई-बहिनोंने आजीवन जपका नियम लिया है। इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

(५) बहुत-से भाई-बहिनोंने केवल जप ही नहीं किया है, उत्साहवश नाम लिखे भी हैं, यद्यपि हमारे पास लिखित नामोंके प्रकाशनकी उपयुक्त व्यवस्था नहीं है।

(६) स्थानोंके नाम दर्ज करनेमें पूरी सावधानी बरती गयी है; इसपर भी भूल होना, कुछ स्थानोंके नाम छूट जाना सम्भव है। कुछ नाम रोमन या प्रान्तीय लिपियोंमें लिखे होनेके कारण उनका हिन्दी-रूपान्तर करनेमें भूल रह सकती है, इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

(७) सोलह नामोंके पूरे मन्त्रका जप हुआ है—३३, १४, २४, ९०० (तैंतीस करोड़, चौदहलाख, चौबीस हजार, नौ सौ)। इनकी नाम-संख्या होती है—५, ३०, २७, ९८, ४०० (पाँच अरब, तीस करोड़, सत्ताईस लाख, अट्ठानबे हजार चार सौ)।

अंकलेश्वर, अंचलगुम्मा, अंजनी, अंजार, अइलख, अक्कलकोट, अकबरपुर, अकठौहाँ, अकनीवा, अकलौनी, अकोढ़ा, अकोढ़ी, अगस्त मुनि (गढ़वाल), अच्छरोडा, अचलजामू, अछरीडीह, अजगरखोन, अजनौरा, अजमेर, अजोध्या (उड़ीसा), अड़ार, अत्वास, अतर्रा, अतरझोला, अनागुण्डी, अम्बारी (मुंगेर), अम्बारी (सीतापुर), अम्बाह, अमझेरा, अमृतसर, अमरावती, अमरेली, अमलनेर, अमलापुरम्, अमलोह, अमवा, अमीनगर सराय, अमोदा, अरई, अरगाम, अरसारा, अलमण्ड, अल्लिप्पे, अलीगंज, अलीगढ़, अवसेरी खेड़ा, अशोकनगर, अहमदाबाद, अहिरौलिया, आउवा, आकोट, आकोल, आखलाकाण्डा, आगर-मालवा, आगरा, आदमापुर, आनन्द, आवगीला, आबूरोड, आरा, आलमपुर, आलिमूड़, आलूथोक (हरदोई), आल्हर, आसनारा, आसी, इकलहरा, इकलेरा, इगतपुर, इच्छापुर, इचलकरंजी, इचाबु, इटाढ़ी, इटावा, इतहार, इन्द्रगढ़, इन्द्राना, इन्दौर, इम्फाल, इलाहाबाद, ईटहरी, ईडर, ईसागढ़, उगोके, उज्जैन, उझयानी, उदखेड़, उदयपुर, उन्नाव, उन्हेल, उम्मसा, उमरखेड़, उमरानाला, उमरारी, उमरिया, उमेदपुर, उरई, उरदान, उरुवा बाजार, उसनीधा, ऊँझा, ऊँनगर, ऊना, ऊमरपुर, ऊमरीकलाँ, एंडली, एकअम्बा, एकमा, ए० पी० ओ० ५६, एरंडोल, ओंकारेश्वर, ओझवलिया, औंगारी, औरंगाबाद, ककढ़िया, कचनार, कछौना, कजरा, कटघरवा, कटनी, कटरा, कटागाँ, कटिहार, कधवन, कन्धार, कन्नौज, कमतरी, कमालपुर, कमाशी, कर्कि, करणवास, करनाल, करमा, करमौली, करवाड़, करसोग, करहोला, करार्खला, करौली, कल्याणपुर,

कल्लकवटगी, कलमड्डू, कलाली, कस्ता, कसावा, कांकेर, कागूपाड्डू, काजीपुर, काढ़ा, कातुरली, कान्धपाकड़, कानगाँव, कानपुर, कामतमपल्ली, कारंजालाड, काल्कुण्ड, काल्चक, काशीपुर, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, किछा, किरानपुर, किसनगंज, किसा, कुंडल, कुँड्ई, कुँवरगाँव, कुकमूर, कुडाना, कुढ़ावल, कुतुबनगर, कुम्हेर, कुमटा, कुमारडूबी, कुरैंय्या, कुवाँ, कुशलगंज, कुशलगढ़, कुसम्हा, कुसमी, कुर्सेल, केतलमण्डी, केलवाड़ा, केवटसावरुआरी, केसली, कैमहरा दीपसिंह, कैमोर, कोकरीकलाँ, कोकलकच्चक, कोचीन, कोटडारेहा, कोटरी, कोटलीवीट, कोटवा नारायणपुर, कोटा, कोठड़ी, कोडंगल, कोड्याई, कोडरमा, कोदरिया बाजार, कोपाखेड़ा, कोरस, कोल्कुलपल्ली, कोल्हापुर, कोलिनडूबा, कोलूखेड़ी, कोसीकलाँ, कौंढ़ा, कौजगेरि, कौसानी, खंडवा, खझौला, खड़या, खडेर टिकतपुरा, खम्मालिया, खम्हरिया, खरगपुर अरसारा, खाचरोद, खानपुर, खानापुर, खापरखेड़ा, खापा, खामखेड़ा, खामगाँव, खासगी (लश्कर), खाराघोड़ा, खितौला बाजार, खिरसू, खीमैंट, खुंटी, खुटार, खुडाला, खेखाड़ा, खेड़ा-ब्रह्मेड़ा, खोपली, खोरिया एमा, खौरी, गंगापुर, गया, गहना, गहाल, गाड़रवारा, गीरडा, गुड़गाँव, गुलबर्गा, गुलाबगंज, गुरावड़ा, गेजना नावाडीह, गेठिया, गैसड़ी, गोंडा, गोगावाँ, गोघरा, गोड़हिया, गोधरा, गोपालगंज, गोपालपुरा, गोपालसमुद्रम्, घाटकोपर (बम्बई), घीसाकापुरा, घुसरी, चंदनपट्टी, चंदा (गया), चाँदपुरा (बिहार), चकना, चकपुरवा, चकराता, चकरौता रोड, चकसाहो, चकयद्दू, चतरा नानकार, चन्दौसी, चनौवा बुजुर्ग, चम्पराजपुर, चमलासा, चमोली, चाँदपुर, चाँदराना, चाणस्मा, चालीसगाँव, चिंचोली, चित्रकोट चितराँव-हिरवार, चिन्तापटला, चिपुरुपल्ली, चिमटाखाल, चिलवरिया, चीखलढ़ाण, चुड़वा, चुनीमारी, चुरारा, चैवरा ब्रह्मडीहा, चोरमट्टी, चौगाई, चौपार, चौसा, छतरपुर, छपरा, छपेरी, छर्रा, छिन्दवाड़ा, जगजीवनपुर, जगतपुर, जगदीशपुर, जगदीशपुर अइहारी, जगदीशपुरी, जगन्नाथपुर, जट्टारी, जण्डियाला, जनकपुर, जबलपुर, जबलपुर छावनी, जमशेदपुर, जमानियाँ, जम्मू, जयकयनगर, जयतहारी, जयन्तीपुर कुरुआ, जयपुर, जलसण, जलालपुर, जर्वे, जवळं, जसवन्तगढ़, जसानियाँ, जहरीखाल, जानसठ, जाम, जाम-अजमेर, जामठी, जामनगर, जामुन धानाकलाँ, जामोला, जार, जारिगुम्मा, जालन्धर, जालना, जालिया, जियाराम राघोपुर, जिवादा, जुब्बल, जुलकिया, जूहू, जेतलपुर, जेवरा, जैतोलीतल्ली, जोगसर, जोगिया, जोधपुर, जोरातलाई, जोरावर डीह, जोशीमठ, जोशीमठ डाड़ों, जौनपुर, जौनुद्दीनपुर, झाँसड़ी, झाँसी, झारसुगुड़ा, झालरापाटन, झालावाड़, झालेखर, झालोद, झिटिया, झींझक, झीझर, झुडिया, झुमरी तिलैया, झूँथरी, झोटवारा, टकेली, टराडवा, टालीगंज, टिकौना, टिमणपुर, टीहु, टुरदूरा, टूँडला, टेढुआ, ठठिया, ठाखरा, ठिकहाँ, ठिकहाँ भवानीपुर, डगावाँ शंकर, डाल्टेनगंज, डिकौली, डिघियाँ, डिहुकपुरा, डीहरा मुजफरा, डुबकिया भवानीपुर, डुमटहर, डुमरी (देवरिया), डूब्बा, डूमा, डूमरी (दरभंगा), डेंगपदर, डेहरी, डौंडी, ढंगा पूर्व, ढौंड, तपकरा, तलाला, तहसील फतेहपुर, ताँडूर, ताजपुर, तारापुर, तालडा, तिनसुकिया, तिरवा, तिलई, तुकेड़ा, तुण्डी, तुनिहा, तुरहापट्टी, तेन्तुलिखुंटि, तेन्दुनी, तेल्हारा, तेहरा, त्रिचनापल्ली, त्रुकवलिया, थातिया, थाना भवन, थौरी, दर्यापुरकलाँ (निमाड़), दरभंगा, दरियापुर, दलपुपा, दलपुरा, दशरंगपुर, दानेकेरा, दारेसलाम (अफ्रीका), दिघी, दिलकुशा, दिलीपनगर, दिल्लोद, दिवानपुरा, दीओदर, दीनानगर, दीपखेड़ा, दुर्ग, दुर्गाडीह, देव, देवगना, देवती, देववन्द, देवरीकलाँ, देवरीनाहर, देवलगाँव साकरण, देवली, देवादा, देवास, देशनोक, देहरादून, देहली, दौदापुर, दौसा, धगुवाकलाँ, धड़ौली, धनतुलसी, धनवाद, धनावाँ, धनोखर, धनोरा, धमतरी, धर्मपुर, धरगुल्ली, धरणगाँव, धरमंगलपुर, धरमजैगढ़, धरमपुरी, धवनी, धार, धीरी, धुमरी, धुलिया, धुळे, धोड़िया हल्सों, धोबौली, धौलपुर, ध्रुमठ, नंदग्राम (सिहोरा), नंदाहाँडि, नई, नई दिल्ली, नकहरा, नगला उदैया, नगरमण्ड, नगलाबाँध, नगवा उसपार, नगीना, नगीवावाद, नटिनी, नबावगंज, नयागढ़, नयागाँव, नरसिंहपुरा (उज्जैन), नरसिंहपुरा (उदयपुर), नरहन, नरही, नरेन्द्रपुर, नरेला, नवगाँव, नवटोल, नवरंगपुर, नलवा, नल्लजर्ला, नवादा, नवेगाँव, नागपुर, नागलपुर, नागवदर, नागौर, नाढ़ी, नाथनगर, नापासर, नारदीगंज, नारसनगुरुकुल, नावाडीह (शाहाबाद), नावाडीह (हजारीबाग), निकसी, निजामाबाद, निमियाँ, निर्मला, निवारी, नीमापुर, नेथला, नेपानगर, नेपालगंज, नेम्मिकुरु, नैकिन, नैनी, नैनीताल, नैमिषारण्य, नौगाँव, नौरंगपुर(इमलिया), पंगेड़ी, पंजवारा, पंढरपुर, पंत्पूड़ी

पकरीडीह, पकौली, पचखेड़ा, पचपहाड़, पचरुखिया, पटना, पटियाला, पट्टीबाजार, पठानकोट, पड़री, पताही, पथराई, पथरिया जैंगन, पनगाँव, पनवासा बिक्रौरी, पनहास, पयागपुर नेहोरा, परली बैजनाथ, परवत्ता, परस, परसोड़ा, परसवाड़ा, परसा, परसागढ़ी, परसेड़ी, परसौनी, पलाशी, पवनी, पहिलागढ़, पाँगरखेड़, पाँडसरा, पाटण, पाटणवाव, पाडली, पाण्डेगाँव, पात्रपुर, पाताबोझ, पाथर्डी, पानुड़िया, पालकोंडा, पालगंज, पासुपुला, पिंगुली, पिपरिया, पीठड़, पीपरीगहरवार, पीपलवाड़ा (बहनोली), पीपलहेला, पीपाड़ सिटी, पीरोजपुर, पीलवा, पीलीभीत, पुआरखेड़ा फार्म, पुजारगाँव सकलाना, पुरशौलिया, पुसदवा, पुवायाँ, पूना, पून्छ, पूरनपुर, पेन्डरा, पेराय, पेढ़ाम्बे, पैडगुमल, पोखरेड़ा, प्रतापपुर, प्रयाग, फखरपुर, फगवाड़ा, फतेहगढ़, फतेहपुर, फरीदकोट, फरीदपुर, फरुखाबाद, फरेंदा शुक्ल, फलोदी, फागी, फाजिलका, फिल्लौर, फुलवरी, फुलहरी, फुलैत, फोरबीसगंज, बंगला, बंगीनोवाड़ी (गंजम्), बंगुरेकलाँ, बंधीसलइया, बँसपुरवा, बकेवर, बखेड़, बगलीकलाँ, बघला, बठारा, बड़कागाँव, बड़गाँव, बड़हिया, बड़ोद, बड़ोदा, बड़ौली, बदायूँ, बनकोई, बनगाँव, बनारसछावनी, बबाइचा, बमकोई, बमनिया, बमरौली, बमोरीघाटा, बम्बई, बरईगढ़, बरकापुर, बरघाट, बरवाखुर्द, बरहलगंज, बरियामऊ, बरेली, बलौदी, बसहा, बस्ती, बहराइच, बहूअरवा, बहेरा, बहेरियाकलाँ, बाकरपुर, बागलकोट, बाड़ी, बाड़ीमझेड़आ, बाबूगढ़, बामौरकलाँ, बारडोली, बारापुर, बाराबंकी, बालसमुन्द, बालगीर, बालापुर, बालामऊ, बावल, बावली, बासक, बिछुवाँ, बिजरौनी, बिजावर, बिजौलिया, बिनैका, बिरकोनी, बिरोल, बिल्गा, बिलग्राम, बिलहरी, बिलारा, बिलासपुर, बिसड़ा, बिसौली, बिहरा, बिहिया, बीकानेर, बीकापुर, बीनापाल, बीसलपुर, बुढ़लादा, बुढ़वाणी, बेंगलूर, बेगमपुर, बेगूसराय, बेतिया, बेनकनहल्ली, बेरी, बेलखरा, बेलवड़की, बेलाउर, बेलापुर खुर्द, बेलूरमठ, बेलूर-हासन, बेलोकलाँ, बेहटा ठाकुर नथईका, बेहटा बुजुर्ग, बैकुण्ठपुर, बैजनाथपुर, बैजनाथपुर मठ, बैजाग, बैतूल, बैरासिया, बैरी, बैलीपट्टी तलादोरा, बोगड़ा, बोटाद, बोड़ेगाँव, बोरियाडीह, बोहा, बौंली, ब्यावरछावनी, ब्रह्मशीया, भटनी, भट्टीप्रोलु, भड़, भड़फोरी, भण्डारज बुजुर्ग, भदरा, भदवासी, भदोखर, भद्रावती, भमरहा, भरतपुर, भरौली, भवानन्दपुर, भवानीपुर जीराट, भवानीमण्डी, भवाली, भागीपुर, भाटापारा, भार्थू, भालेचड़ा, भालोद, भावनगर, भावलखेड़ा, भिडरी, भिलाई, भीकड़गाँव, भीकनपुर, भीमड़ास, भीलवाड़ा, भुज, भूसाकमलपुर, भूसावल, भृगुपुर, भृङ्गीनारी, भेदुंरी, भैरावोड, भैरोपुर, भोजड़े, भोटा, भोपाल, भोरासा, भौंरासा, मंझरिया, मंडला, मंडाना, मकड़ाई, मकथल, मकुनाहि, मगरिया, मझवारी, मझोला, मझौलिया, मझौली, मझौवा, मटुकपुर, मड़कन, मण्डी डबवाली, मथुरा, मदनेश्वर, मदारीचक, मदुरा, मद्रास, मधुबनी, मनकापुर, मनमायो, मनमोहनगाँव, मन्दसौर, मन्नारगुडी, मानावदर, मानिकचौक, मनिगाँव, मनीछुपरा, मनेरमवैया, मलकापुर, मलकापुर (कोल्हापुर), मलवाड़ा, मलाड, मसौढ़ी, मस्की, महदिउरा, महराजगंज, महराजपुर, महरौनी, महापुर, महिषादल, महीपविगहा, महुआइन, महुआवा, महोली (बहराइच), महोली (सीतापुर), माटे, माणिकपुर, माधोगंज, माधोपुर गोविन्द, माधौपुर, मान्धाता ओंकारजी, मारवाड़ जंकशन, मार्तण्ड, मालवण, मितक्याचीवाड़ी, मिश्रिख, मीनावदा, मीरगंज, मीरजापुर, मीरपुर, मुंगेर, मुकन्दपुर, मुकपाल, मुकुन्दगढ़, मुकुन्दपुर, मुक्तापुर, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुजरा, मुड़खुसरा, मुड़गाँव, मुन्नीपल्लं, मुरादाबाद, मुरारपट्टी, मुसालिया, मुहम्मदाबाद गोहना, मूंदी, मूंसी, मूड़री, मेंगराग्राम, मेंठिग्राम, मेरठ, मेड़तारोड, मोख, मोगलिया, मोटाशिंघुड़ा, मोतिहारी, मोथा, मोदीनगर, मैनपुरी, मैनाग्राम, मैसूर, मोरवन, मोरहाड़, मोहगाँव, मोहनदी, मौथिया, यावगल, यादवाड़, यावल, येवला, रकौली, रघुनाथपुर, रजपरी, रणापुर, रतनमनिया, रनजीतपुर, रनियाँ, रसलपुर, रसिदपुर, रसूलापुर, रसौली, रहावली उवारी, राँची, राघवपुर, राजकोट, राजनगर कोलियरी, राजपुर, राजमहेन्द्री, राजाखेड़ा, राजापुर, राजाभात टी० ई०, राजिम, राजोरी, राधनपुर, राधाउर, रानीखेत, रानीगाँव, रानीबाग, रामनगर (नैनीताल), रामनगर (मुजफ्फरपुर), रामपावेली, रामपिपरिया, रामपुर, रामपुर अहरौली, रामपुरवा, रामपुर स्टेट, रामपुरी, रामानुजगंज, रायदुर्ग,

रायपुर, रावतपुर, रावाँ, रींवा, रींगा, रुड़की, रुड़की छावनी, रूढ़, रूदावल, रूपसागर, रूपाखेड़ा, रेंका, रेड़िया, रेनवाल, रोशनाबाद, रोहिणी, लक्ष्मणपुर, लखनऊ, लखीमपुर खीरी, लखाड़ी, लश्कर, लहरियासराय, लहरी तिवारी डीह, लहेजी, लाखागुडा, लालगढ़, लासलगाँव, लिम्बडी, लिलसी, लुधियाना, लोनार, लोनावलें, लोहार्दा, लोहीपुरा, लौकही, वड़गाँव, वडनगर, वनरक्षुला, वरईगढ़, वरवा छतरदास, वरुर, वर्हा, वाडिया, वान्दे धर्मपुर, वाराणसी, वारुड, विजबार, विष्नुपुर (नैपाल), वीरगाँव, वीरसिंहपुर, वृन्दावन, वेंग्वापेट, वेढ़ना लश्करीपुर, वेरमा, वेरावळ शहर, वैसाडीह, शंकरपुर, शकूराबाद, शमशाबाद, शमसाबाद (फतेहपुर), शरफुद्दीनपुर, शर्मिष्ठापुर, शशिपुर, शहरना, शहापुर, शापुर (सोरठ), शामपुर, शाहआलमनगर, शाहगढ़, शाहनगर, शाहपुर पट्टी, शाहपुर मगरौन, शिमला, शिलकोट, शिवपुरी, शुभगढ़, शूजापुर, शेंदुरवाड़ा, शेखपुरा, शेप्पुर, शैदापुर, शोजापुर, शोभनाथपुर, श्योपुरकलाँ, श्रीडूंगरगढ़, श्रीनगर, श्रीपुरम्, श्रीरामपुर, श्रीवैकुण्ठम्, संगारेड्डी, सकलोर, सठसोली, सडिला, सतसा, सन्ताहार दालपंटी (पाकिस्तान), सफराई, सम्बलपुर, समसाबाद, समस्तवती, समाना, समैला, समोज, सरधाना, सरवदेही, सरवतखनि, सरसवाँ, सरायमारुक, सरायहरखू, सरियाँ, सलइया, सलकिया, सवाई जयपुर, सवाई माधोपुर, ससनी, ससौला, सहजना, सहजपुर, सहसों, सहार, सहारनपुर, सांगला, सांगली, साकोल, सागर, सागोर, सादीपुर, सापित, सारंगपुर, सावरट, साहनपुर, सिंगरायपुर, सिंगापुर, सिंधिया, हीवन, सिंघोला, सिउनी, सिउनी-ग्राम, सिकन्दरा, सिक्कम, सिगदोनी, सिगारपुर, सिनापाली, सिमरी, सिम्भावली, सिरजगाँव बंड, सिरमौर, सिरसा, सिरसी, सिरीपुरम्, सिरोज, सिल्हेटी, सिलौट, सिलौड़ी, सिहोरा रोड, सीआनी (सौराष्ट्र), सीकर, सीतापुर, सीताबर्डी, सीतारामपुर, सुंवासरा, सुकमा, सुनीजा, सुन्दरपुरा, सुभवा, सुमेरपुर, सुरेन्द्रनगर, सुल्तानपुर, सुल्तानपुर घोष, सुवाणा, सुसंडा, सुहई साहपुर, सूरत, सूरतगढ़, सेंदरडा, सेखपुरवा, सेमरा बाजार, सेमरा वराशी, सेलोटपार, सैलवारा, सौंढ़ी, सोजतरोड, सोडपुर, सोनगाँव, सोनाली, सोमेश्वर, सोलापुर, सोहजना, सोहरिया, सोहागपुर, सौतियान, सौरेनी बाजार, स्वांगपुर (वेहटाधीरा), हंसकेर, हटनी, हथवानी, हनुमानगढ़, हमामपुर, हरदा, हरनगाँव, हरनवाड़ा, हरिपुर गौरीदास टोल, हरिपुर डीह टोल, हरिपुर माल टोल, हरिहरपुर, हरीगढ़, हृदयरामपुर, हृषिकेश, हलद्वानी, हल्दूचौड़, हसनगंज, हसनपुर सुगर मिल, हाटबोरा, हाथरस, हापुड़, हालदा, हिंगणी, हिण्डोरिया, हिरद विगहा, हीमगीर-रोड, हीरा भड़ोखर, हीरीसेव, हैदराबाद, होर्मा ।

नाम-जप-विभाग—'कल्याण'-कार्यालय, गोरखपुर

उद्धवका गोपी-प्रेम

स्वर्ण रजत हीरक मौक्तिक माणिक्य लब्धि,
सबै वारि डारौं ब्रज-रज परसन मैं ।
राज काज ताज साज लाज औ समाज आज,
धूरि सों बिखेरौं हौं जमुना कछारन मैं ॥
सिन्धु गहराई सबै छुद्र करि हेय मानौं,
धेनु की आँसुन भरी थिर पलकन मैं ।
राजनीति अर्थनीति वेद दरसन सबै,
साँचौं झोंकि डारौं गोपिन के दरसन मैं ॥

—श्रीनाथ मेहरोत्रा, 'भ्रान्त'

श्रीकृष्णजन्म-महोत्सव

[भाद्रपद कृष्ण ८, ६ सितम्बर, शनिवार, सं० २०१५ वि० को श्रीकृष्णजन्मभूमि मथुरामें श्रीकृष्ण-मन्दिरके उद्घाटन-महोत्सवपर हनुमानप्रसाद पोद्दारका भाषण]

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥
नवीनजलदावलीललितकान्तिकान्ताकृति-
स्फुरन्मकरकुण्डलप्रतिमचारुगण्डस्थलम् ।
प्रफुल्लनलिनायतेक्षणमनुक्षणैकक्षणं
चकास्तु मम मानसं सदयकृष्णतत्त्वश्रिया ॥

सम्मान्य अध्यक्ष महोदय, पूज्यपाद साधु-महात्मा-विप्र-गुरुवृन्द और आदरणीय माताएँ-बहिनें !

भूमण्डलमें सबसे श्रेष्ठ और पवित्र देश है—भारतवर्ष । देवता भी इसमें जन्मग्रहण करनेके लिये लालायित रहते हैं । भारतवर्षमें सप्तपुरियाँ सर्वश्रेष्ठ और परम पवित्र हैं—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

इनमें भी स्वयं भगवान्की प्राकट्य-लीलास्थली होनेके कारण अयोध्या तथा मथुराकी विशेषता है । उपर्युक्त श्लोकमें सबसे पहले 'अजन्माकी जन्मभूमि' इन्हीं दोनों पावन पुरियोंके नाम देकर इनका महत्त्व प्रदर्शित किया गया है । पद्मपुराणमें मथुराका माहात्म्य बतलाते हुए स्वयं भगवान् कहते हैं—

अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः
पुरीं मदीयां परमां सनातनीम् ।
सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रसंस्तुतं
मनोरमां तां मथुरां सनातनीम् ॥
काश्यादयो यद्यपि सन्ति पुर्य-
स्तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या ।
यज्जन्ममौञ्जीव्रतमृत्युदाहै-
र्नृणां चतुर्धा विदधाति मुक्तिम् ॥

× × ×

बालकोऽपि ध्रुवो यत्र ममाराधनतत्परः ।
प्राप स्थानं परं शुद्धं यत्र युक्तं पितामहैः ॥
तां पुरीं प्राप्य मथुरां मदीयां सुरदुर्लभाम् ।
खञ्जो मुकस्त्वान्धको वापि प्राणानेव परित्यजेत् ॥

'अहो ! कितने आश्चर्यकी बात है कि दूषित चित्तवाले मनुष्य मेरी इस उत्कृष्ट सनातन एवं मनोरम पुरीको, जिसकी देवराज इन्द्र, नागराज अनन्त और बड़े-बड़े मुनीश्वर भी स्तुति करते हैं, नहीं जानते । यद्यपि काशी आदि अनेक मोक्षदायिनी पुरियाँ हैं, तथापि उन सबमें मथुरापुरी ही धन्य है; क्योंकि यह अपने क्षेत्रमें जन्म, उपनयन, मृत्यु और दाहसंस्कार—इन चारों ही कारणोंसे मनुष्यको मुक्ति देती है । ध्रुवने बालक होनेपर भी जहाँ मेरी (भगवान्की) आराधना करके उस परम विशुद्ध धामको प्राप्त किया जो पितामह ब्रह्मा आदिको भी नहीं मिला । वह मेरी मथुरापुरी देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, वहाँ जाकर लँगड़ा-अन्धा मनुष्य भी प्राणोंका परित्याग करता है, तो उसकी भी मुक्ति हो जाती है ।'

इस परम पावनी मथुरा नगरीमें कंसके कारागारका वह स्थान परम धन्य है, जहाँ सर्वलोकमहेश्वर, सर्वात्मा, सर्वमय और सर्वातीत योगेश्वरेश्वर स्वयं भगवान्का दिव्य प्राकट्य हुआ था और हम लोग भी परम धन्य हैं जो आज उनके दिव्य जन्म-महोत्सवके इस परम पावन धन्य दिवसपर—उसी परम पावन स्थानपर एकत्र होनेका सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं, जहाँ उनका दिव्य जन्म हुआ था । हम कृतज्ञ हैं प्रातःस्मरणीय महामना मालवीयजीके तथा आदर्श चरित्र धर्महृदय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाके—जिनके उत्साह, लगन, सदाग्रह, अध्यवसाय, प्रयत्न तथा उदारतासे यह श्रीकृष्णजन्मभूमि पुनः श्रीकृष्णजन्मभूमिके गौरवको प्राप्त कर सकी । आरम्भसे लेकर अबतकके इसके कार्यसंचालक, इसकी समितिके उत्साही तथा कर्मठ सभी सदस्य समस्त देशवासियोंके कृतज्ञताके पात्र हैं, जिन्होंने इस पवित्र कार्यमें समय, सम्मति, सत्परामर्श, सहायता और साहस प्रदानकर देशका मुख उज्ज्वल किया है । मेरे सम्मान्य मित्र श्रीभगवानदासजी भार्गव तथा पं० देवधरजी शर्माका तो मैं विशेषरूपसे कृतज्ञ हूँ, जो वर्षोंसे अत्यन्त निर्भीकता,

बुद्धिमत्ता तथा उदारताके साथ सारे बाधा-विघ्नोंका सामना करते तथा उन्हें हटाते हुए इस श्रीकृष्णजन्मभूमिके महान् कार्यको आगे बढ़ा रहे हैं। और जिनकी कृपा तथा प्रेमभरे आग्रहसे मुझे सर्वथा असमर्थ एवं अयोग्य होनेपर भी आज यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पवित्र व्रजभूमिके पावन रजका स्पर्श करने, यहाँ इस महान् पवित्र कार्यमें सम्मिलित होने तथा आप सबके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करनेमें मेरे सम्मान्य स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजीका प्रेमभरा व्यक्तिगत आवाहन भी कारण है, अतएव मैं उनका भी हृदयसे कृतज्ञ हूँ।

श्रीकृष्णजन्मभूमि-उद्धारके इस महान् कार्यसे 'देशका मुख उज्ज्वल' हुआ है। किसी एक पद्धतिसे होनेवाली पूजास्थलीको तथा किसी अवतार अथवा महापुरुषके जन्म या लीला-स्थलको बलात्कारसे हस्तगत करके उसपर अपना अधिकार जमाना पाप है और ऐसा अधिकार जबतक रहता है, तबतक वह कलङ्क, वह पाप, उस पापकी स्मृति तथा तज्जन्य रागद्वेष बना रहता है। यहाँका यह पाप-कलङ्क मिटनेसे देशका मुख यथार्थमें ही उज्ज्वल हुआ। कुछ दिनों पहलेतक हमारे देशमें 'पर-राज्य' था—अब 'स्व-राज्य' है। इस समय तो ऐसा एक भी कलङ्क नहीं रहना चाहिये। सोमनाथ मन्दिरका पुनरुद्धार स्वर्गीय सरदार पटेल महोदयके पावन प्रयत्नसे हुआ। ऐसे ही श्रीकाशीके पवित्र मन्दिर, अयोध्यापुरीके पावन-स्थान, सिद्धपुरका मन्दिर तथा अन्यान्य सभी पवित्र स्थानोंका उद्धार होना चाहिये। हमारे मुसल्मान भाइयोंको चाहिये कि वे स्वतन्त्र देशके नागरिकोंकी दृष्टिसे देशपर लगे इन पाप-कलङ्कोंके जितने स्मारक हैं, उन सबको पुण्य-दर्शन बना दें। हिंदू अपने धर्म-स्थानोंपर उपासना करें, मुसल्मान अपने स्थानोंपर, इसी प्रकार सभी अपने-अपने पवित्र स्थानोंपर निर्विघ्नतासे पूजा करें, तभी देशकी शोभा है, तभी राज्यकी शोभा है। आजकल—गरीबोंकी गरीबीका लाभ उठाकर ईसाई प्रचारक देशमें जहाँ-तहाँ बड़े जोरसे ईसाई-मतका प्रचार कर रहे हैं। कहीं-कहीं कई मतोंके लोग मन्दिर-मूर्ति आदिका ध्वंस कर रहे हैं—यह देशपर पाप-कलङ्क है। भगवान् दो नहीं हैं, वे सभीके हैं; हिंदूके भी, मुसल्मानके भी, ईसाई-पारसीके भी तथा अन्यान्य सभीके भी। मान्यता तथा पद्धति भिन्न-भिन्न हैं तथा अपनी-अपनी पद्धतिसे सबको निर्दोष पूजा करनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इसीलिये ऐसे स्थानोंके उद्धारकी परम आवश्यकता है, जिनपर दूसरी पद्धतिवालोंने बलात्कारसे अधिकार कर रक्खा है और जो उस पापके स्मारक रूपमें विद्यमान हैं!

हमारे श्रीकृष्ण तो ऐसे हैं कि उनकी ओर जिनकी दृष्टि गयी, वही अपनी सुध-बुध भूलकर लट्टू हो गया। अपने सम्प्रदायमें रहते हुए ही श्रीकृष्णका प्रेमी बन गया। ऐसे अनेकों मुसल्मान महानुभाव हुए हैं और आज भी हैं। उनमेंसे कुछके उद्गार मैं यहाँ आपको सुना रहा हूँ। यूरोपियन बहुत-से भक्त-हृदय नर-नारी ऐसे हैं जो श्रीकृष्णके चरणोंमें अपना सब कुछ न्योछावर कर प्रेमभिखारी बने हुए हैं। ऐसे वर्तमानके कई मुसल्मान, यूरोपियन भाग्यशाली नर-नारियोंसे मेरा परिचय है। अब कुछ उद्गार सुनिये—

रहीमजी श्यामसुन्दरकी छबिको चित्तसे टाल ही नहीं सकते। वे गाते हैं—

कमल-दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं मदनमोहन की मंद-मंद मुसुकानि॥
दसनन की दुति चपलाहू ते, चारु चपल चमकानि।
बसुधा की बस करी मधुरता, सुधा-पगी बतरानि॥
चढ़ी रहै चित हिय बिसाल की मुक्तमाल लहरानि।
नृत्य समय पीताम्बरकी वह फहरि-फहरि फहरानि॥
अनुदिन श्रीबृंदावन ब्रज में आवन-जावन जानि।
छबि रहीम चित ते न टरति है, सकल स्याम की बानि॥

वाहिद नन्दनन्दनपर निरन्तर लगन रहनेकी शुभकामना करते हैं—

सुंदर सुजानपर, मंद मुसुकानपर,
बाँसुरी की तानपर ठौरन ठगी रहै।
मूरति बिसालपर, कंचन की मालपर,
खंजन-सी चालपर खौरन खगी रहै॥
भौंहैं धनु मैनपर, लौने जुग-नैनपर,
सुद्धरस बैनपर वाहिद पगी रहै।
चंचल से तनपर, साँवरे बदनपर,
नंद के नँदनपर लगन लगी रहै॥

रसिक रसखानजी तो पशु-पक्षी-पत्थर बनकर भी कन्हैयाके दास रहना चाहते हैं—

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं मिलि गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरौ चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥

पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो सिर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं वहि कालिंदी कूल कदंबकी डारन॥

नजीर जय बोलते-बोलते नहीं थकते—

तारीफ करूँ मैं अब क्या-क्या उस मुरली-धुनके बजैया की,
नित सेवा-कुंज फिरैया की और बन-बन गऊ चरैया की।
गोपाल बिहारी बनवारी दुख-हरना मेहर-करैया की,
गिरधारी सुंदर स्याम बरन और पंदड़ जोगी मैया की।
यह लीला है उस नंद-ललन मनमोहन जसुमति-छैया की,
रस ध्यान सुनो, दंडौत करो, जै बोलो कृष्ण कन्हैया की॥

देवी ताज तो सब कुछ सहकर उनकी बनी रहना चाहती हैं—

सुनो दिलजानी, मेरे दिलकी कहानी
तुम दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
देवपूजा ठानी, औ निवाज हूँ भुलानी,
तजे कलमा-कुरान सारे, गुनन गहूँगी मैं॥
साँवला, सलोना, सिरताज सर कुल्लेदार,
तेरे नेह-दाघ में निदाघ हो दहूँगी मैं।
नंद के कुमार, कुरबान ताँड़ी सूरतपर
ताँड़े नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं॥

ये भक्त तो हर शै में उन्हींका नूर देखते हुए उनके कदमोंमें ही बसे रहना चाहते हैं—

जहाँ देखो वहाँ मौजूद, मेरा कृष्ण प्यारा है,
उसीका सब है जल्वा, जो जहाँमें आशकारा है॥
तेरा दम भरते हैं हिंदू अगर नाकूस बजता है,
तुम्हींको शेखने प्यारी, अजाँ देकर पुकारा है।
न होते जल्वागर तुम तो, यह गिरिजा कबका गिर जाता,
निसारी को भी तो आखिर, तुम्हारा ही सहारा है॥
तुम्हारा नूर है हर शै में, कोसे कोह तक प्यारे,
इसीसे कहके हरि-हर तुमको हिन्दूने पुकारा है।
गुनह बख्शो, रसाई दो, बसा लो अपने कदमोंमें,
बुरा है या भला है, जैसा है प्यारा तुम्हारा है॥

हज़रत नफ़ीस खलीलीने तो कन्हैयाकी छबिपर अपना दिल ही उड़ा दिया है—

कन्हैयाकी आँखें हिरन-सी नसीली।
कन्हैयाकी शोखी कली-सी रसीली॥
कन्हैयाकी छबि दिल उड़ा लेनेवाली।
कन्हैयाकी सूरत लुभा लेनेवाली॥
कन्हैयाकी हर बातमें एक रस है।
कन्हैयाका दीदार सीमी कफ़स है॥

इसीलिये तो हिन्दी-साहित्य-गगनके शरदिन्दु श्रीभारतेन्दुने कहा—

'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिंदुन वारियै।'

पर ये हरिके जन मुसल्मान क्या करते, बेचारे लाचार थे। उस साँवरे-सलोनेकी छबिमाधुरीमें ऐसा ही जादू है, जिसने इस ओर भूले-भटके भी निहार लिया, वही लुट गया। इसीलिये तो यह घोषणा की गयी—

मा यात पान्थाः पथि भीमरथ्या दिगम्बरः कोऽपि तमालनीलः।
विन्यस्तहस्तोऽपि नितम्बबिम्बे धूतः समाकर्षति चित्तवित्तम्॥

'अरे पथिको! उस राह मत जाना, वह रास्ता बड़ा ही भयावना है। वहाँ अपने नितम्ब-बिम्बपर हाथ रक्खे जो तमाल-सरीखा नीलश्याम धूर्त बालक खड़ा है, वह अपने समीप होकर जानेवाले किसी भी पथिकका चित्तरूपी धन लूटे बिना नहीं छोड़ता।'

इन्हीं सर्वजन-मन-मोहन श्रीकृष्णका उन्हींकी पुण्य-जन्मस्थलीमें आज पुनः प्राकट्य हो रहा है, यह हमारे लिये बड़े ही सौभाग्यकी बात है।

श्रीकृष्णका स्वरूप

अब—'श्रीकृष्ण क्या हैं?' यह प्रश्न रहता है और यह सदा बना ही रहेगा; क्योंकि असीम-अनन्तकी सीमा कौन बता सकता है और कौन उनके स्वरूपका अन्त पा सकता है? वे सब कुछ हैं, सब कुछसे परे हैं, सर्वमय हैं, सर्वातीत हैं। अनन्त, असीम, अलौकिक, लौकिक, विरुद्ध धर्म-गुणोंका उनमें एक ही समय पूर्ण प्रकाश है। उनको जो जिस दृष्टिसे देखते हैं, उन्हें वे वैसे ही दिखायी देते हैं। उनकी कल्पनासे नहीं, वे सब समय सभी कुछ हैं ही। भावुक भक्तोंकी बात छोड़िये—महात्माजीके साथी और अनुयायी प्रसिद्ध बुद्धिवादी श्रीकाका कालेलकरजीने लिखा है—

'××× श्रीकृष्णने आर्यजनताको अधिक अन्तर्मुख बनाया है, अधिक आत्मपरायण बनाया है। भोग और त्याग, गृहस्थाश्रम और संन्यास, प्रवृत्ति और निवृत्ति, कर्म और ज्ञान, इहलोक और परलोक इत्यादि सब द्वन्द्वोंका

विरोध ध्यास-रूप है; सबमें एक ही तत्त्व रहा है, अपने जीवन और उपदेशसे श्रीकृष्णने यह बात सिद्ध करके बता दी है। आर्यजीवनपर अधिक-से-अधिक प्रभाव तो श्रीकृष्ण-का ही है, फिर भी इस प्रभावका स्वरूप ठहराना कठिन है। जिस प्रकार अत्यन्त सरल भाषामें लिखी गयी भगवद्गीताके अनेक अर्थ किये गये हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णके जीवनमें विद्यमान रहस्यका भी विविध प्रकारसे वर्णन होता रहा है। ××× महाभारतके श्रीकृष्ण, श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण, गीतगोविन्दके श्रीकृष्ण, चैतन्यमहाप्रभुके श्रीकृष्ण और तुकाराम बुवाके श्रीकृष्ण एक होते हुए भी भिन्न हैं। आजकलके जमानेमें भी नवीनचन्द्र सेनके श्रीकृष्ण, वङ्किम-चन्द्रके श्रीकृष्णसे भिन्न हैं। गाँधीजीके श्रीकृष्ण तिलकके श्रीकृष्णसे जुदा हैं और श्रीअरविन्दके श्रीकृष्ण तो सबसे ही न्यारे हैं। ऐसे सुलभ और दुर्लभ, एक और अनेक, रसिक और वैरागी, बागी और संग्राहक, प्रेमिल और निष्ठुर, मायावी और सरल श्रीकृष्णकी जयन्ती किस प्रकार मनायी जाय, यह ठहराना बड़ा कठिन है—× × ×'

श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारोंके मूल अवतारी, चतुर्व्यूह-में सर्वप्रथम भगवान् वासुदेव, समस्त भगवत्स्वरूपोंके अंशी, ब्रह्मकी प्रतिष्ठा, सर्वेश्वरेश्वर, सर्वलोकमहेश्वर, निर्गुण—स्वरूपभूतगुणमय, निराकार—भौतिक आकाररहित, परमेश्वर, अचिन्त्यानन्त-सद्गुण-समुद्र, सर्वगुणमय, सर्वमय, सर्वातीत, सर्वात्मा, सर्वजीवप्राण, अखिलप्रेमामृतसिन्धु, षोडशकलापूर्ण, षडैश्वर्यसम्पन्न, हानोपादानरहित नित्य सत्य दिव्य चिन्मय भगवद्देहरूप, दिव्य सच्चिदानन्द प्रेमघनमूर्ति पूर्ण पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् हैं, ऐसा विभिन्न शास्त्रोंमें, वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, तन्त्र तथा ऋषि-मुनिरचित एवं अनुभवी महात्माओंके द्वारा प्रणीत ग्रन्थोंमें बार-बार कहा गया है। इसके अतिरिक्त उनमें ऐसे सभी भावों तथा गुणोंका विकास है, जो कहीं भी एक स्थानपर नहीं मिलता। समस्त विभूतियाँ, समग्र जगत् उनके एक ही अंशमें स्थित है—'एकांशेन स्थितो जगत्।' उनमें 'पूर्ण मानवता' एवं पूर्ण भगवत्ताका युगपत् प्रकाश है तथा वे 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस'के मूर्तिमान् विग्रह हैं। जड तथा चेतन उन्हींकी प्रकृति है, क्षर-अक्षर उन्हीं पुरुषोत्तमके आश्रित हैं। महाभारत आदिपर्व (अध्याय ६३, श्लोक ९९ से १०४) में श्रीकृष्णके प्राकट्यका वर्णन करते हुए कहा गया है—

'विश्ववन्दित महायशस्वी भगवान् जगत्के जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये वसुदेवजीके द्वारा श्रीदेवकीजीसे प्रकट हुए। वे भगवान् आदि-अन्तसे रहित, द्युतिमान्, सम्पूर्ण जगत्के कर्ता और प्रभु हैं। वे ही अव्यक्त, अक्षरब्रह्म और त्रिगुणात्मक प्रधान हैं। वे आत्मा, अव्यय, प्रकृति (उपादान), प्रभव (उत्पत्तिकारण), प्रभु (अधिष्ठाता), पुरुष, विश्वकर्मा, सत्त्वगुणसे प्राप्त होने योग्य, प्रणवाक्षर, अनन्त, अचल, देव, हंस, नारायण, प्रभु, धाता, अजन्मा, अव्यक्त, पर, अविनाशी, कैवल्य, निर्गुण, विश्वरूप, अनादि, जन्मरहित और अविकार हैं। वे सर्वव्यापी, परमपुरुष परमात्मा, सबके कर्ता और सम्पूर्ण भूतोंके पितामह हैं। उन्होंने ही धर्मके संवर्धनके लिये अन्धक और वृष्णिकुलमें बलराम और श्रीकृष्णरूपमें अवतार लिया था। वे दोनों भाई सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, महापराक्रमी और समस्त शास्त्रों-के ज्ञानमें प्रवीण थे।' इससे भी भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं यह सिद्ध होता है।

श्रीकृष्ण सर्वगुण-सम्पन्न पूर्ण पुरुष

भगवान् श्रीकृष्ण परमयोगी, योगसिद्ध, योगेश्वर महापुरुष हैं। इसके अनेक प्रमाण हैं। वे वर्णाश्रमधर्मानुसार आचरण करनेवाले थे तथा नित्य नियमित विहित कर्मानुष्ठान करते थे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आत्मध्यान, स्नान, संध्योपासन, सूर्योपस्थान, देवर्षि-पितृ-तर्पण तथा गुरुजनोंको प्रणाम करते थे। वे महादानी थे। प्रतिदिन वस्त्रालङ्कारोंसे विभूषित ८४०१३ दुग्धवती गौओंका दान करते थे। माता-पिताकी सेवा करते थे। गुरुसेवक थे। ब्रह्मण्य थे—भक्ति-श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों-की पूजा करते थे। महान् ऋषियों, मुनियोंके द्वारा सुपूजित थे। सर्व-ज्वरहारी थे—इन्द्रका शक्ति-गर्वज्वर, ब्रह्माका ज्ञान-गर्वज्वर, राजाओंका बलगर्वज्वर उन्होंने अनायास हरण कर लिया था। वे लोकनायक थे। स्वयं आप्तकाम पूर्णकाम होनेपर भी लोकसंग्रहके लिये आदर्श शुभकार्य किया करते थे। वे सदा निष्काम थे। अत्याचारी राजाओंका ध्वंस किया पर स्वयं कहीं भी राज्य ग्रहण नहीं किया। वे ममता-शून्य थे, गान्धारीके द्वारा अपने विशाल परिवारके विनाशका शाप सुनकर प्रसन्न हुए थे। वे लोक-सेवक तथा दीन-दुर्बलोंके बन्धु थे। दुष्टोंका नाश करके उन्हें अपने परमधाममें पहुँचाना उनका सहज कर्म था। उनकी दीर्घ आयुका प्रत्येक दिन नहीं तो, प्रत्येक सप्ताह धर्म-संस्थापनार्थ युद्ध करने तथा दुष्टोंका दमन करनेमें ही बीता।

जिस समय वे अवतीर्ण हुए, उसी समयसे उनका यह दुष्टोद्धार कार्य आरम्भ हो गया था। जिस समय वे नंग-धडंग बालक थे, उसी समय पूतना, शकटासुर, तृणावर्त आदि असुरोंको उन्होंने अमरधाम पहुँचा दिया था। गोकुल-वृन्दावनमें ग्यारह वर्षतक गौएँ चरायीं। ग्वाल-सखाओंके साथ धमा-चौकड़ी मचायी, गोपबालकोंके साथ विविध विचित्र लीलाएँ कीं, निभृत-निकुञ्जोंमें रसकी नदियाँ बहायीं; पर उस समय भी वे असुर-राक्षसोंकी चटनी बनानेसे नहीं चूके। पता नहीं, कहाँसे बलका भण्डार उनमें आ गया। शिक्षाप्राप्त करने उज्जैन तो कंस-वधके बहुत दिनों बाद गये थे। परंतु मुष्टिक-चाणूरका चूरन तो इससे पहले ही बना दिया। कूट-शल-तोशलको तिनकेकी ज्यों तोड़ दिया तथा कुवलयापीड़ एवं सहस्र-सहस्र हाथियोंके बल रखनेवाले मामा कंसका कचूमर निकाल दिया। सारा बल तो इन्हींसे आता है। फिर इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है!

श्रीकृष्ण बड़े अद्भुतकर्मा हैं। उन्होंने अपने जीवनमें बड़े-बड़े अद्भुत कार्य किये। सबसे पहले कंसके कारागारमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी अमित तेजस्वी, सर्वालङ्कारविभूषित अद्भुत चतुर्भुज रूपमें प्रकट हुए; फिर पूतनावध, कुबेर-पुत्रोंका उद्धार, ब्रह्माजीका मोहभंग, दावानल-पान, गोवर्धनपूजन तथा गोवर्धन-धारण, इन्द्रगर्वहरण, वरुणलोकमें पूजा, गोपोंको ब्रह्म तथा परमधामका दर्शन कराना, रासलीला—दो-दो गोपियोंके बीचमें एक-एक स्वरूप प्रकट कर देना, सुदर्शनका उद्धार, शङ्खचूडका उद्धार, मथुराके मार्गमें अक्रूरको भगवद्दर्शन कराना, कुब्जाको सीधी करना, कंसके दरबारमें अनेक रूप दिखाना, मृत गुरुपुत्रको लाना, नृगका उद्धार, ऋषियोंका स्तवन स्वीकार करना, मृत देवकी-पुत्रोंको लाना, मिथिलामें एक ही साथ विविधरूप धारण करना, द्रौपदीका चीर बढ़ाना, एक पत्ता खाकर सशिष्य दुर्वासाका पेट भर देना, व्रजमें माताको, कौरवसभामें दुर्योधनादिको, रणक्षेत्रमें अर्जुनको तथा द्वारका लौटते समय उत्तङ्कको विविध विचित्र विराट्रूप दिखलाना। अर्जुनको दिखाये गये विराट्रूपमें भविष्यके चित्र—भीष्म-द्रोणादिके उत्तमाङ्गोंका कालके विकराल दाढ़ोंमें चूर-चूर दिखला देना, जयद्रथवधके समय सूर्यको अकालमें ही छिपा देना, उत्तराके गर्भमें मरे हुए परीक्षित्को जिला देना, नारदको प्रत्येक महलमें दर्शन देना तथा त्रिभुवनमोहन दिव्यविग्रहका इस शरीरसे ही परमधाम पधारना—आदि सभी अद्भुत कर्म हैं।

श्रीकृष्णकी नृत्यकला-निपुणता भी अद्भुत ही है। शिवनृत्य 'ताण्डव' और पार्वतीनृत्य 'लास्य' कहलाते हैं। परंतु श्रीकृष्णका रासमण्डलका नृत्य सर्वथा निराले ढंगका है और क्रोधोन्मत्त भीषण विषधर भुजङ्गमके भयानक फणोंपर नृत्य करना तो नृत्यकलाकी पराकाष्ठा है। कैसी शरीर-साधना, चरण-लाघवता और विचित्र मनोयोग है। संगीतमें चार मत—१. नारदमत संगीत, २. भरतमत संगीत, ३. हनुमन्मत संगीत और ४. श्रीकृष्णमत संगीत प्रसिद्ध हैं। इनमें सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण तथा कठिन है—श्रीकृष्णमत सङ्गीत।

सङ्गीतशास्त्रके तो श्रीकृष्ण महान् आचार्य हैं। इनकी मुरलीकी मधुर-ध्वनि चतुर्दश भुवनोंको मोहित करती थी। इस मुरली-ध्वनिने ही कोटि-कोटि व्रजसुन्दरियोंको सब कुछ विस्मृत करा दिया था और वे रात्रिके समय आकर्षित होकर श्यामसुन्दरके पास चली आयी थीं। देवर्षि नारद-जीने दो वर्षतक इनकी पटरानी श्रीजाम्बवती और सत्यभामाके निकट सङ्गीत-शास्त्रका अभ्यास किया था, तदनन्तर दो वर्षतक श्रीरुक्मिणीजीसे सङ्गीतकी शिक्षा प्राप्त करके पूर्ण निपुणता लाभ की थी। जिनकी रानियाँ नारदजी-जैसे प्रसिद्ध सङ्गीतशिक्षार्थीको सङ्गीतकी परमोच्च शिक्षा दे सकती हैं, उनका अपना सङ्गीतशास्त्रका ज्ञान कितना अगाध होगा।

श्रीकृष्ण सच्चे आदर्श मित्र थे। राग-द्वेषसे सर्वथा रहित होकर भी वे कहते थे—'अर्जुनके शत्रु मेरे शत्रु हैं और उसके मित्र मेरे मित्र हैं।' उन्होंने सात्यकिसे कहा—मैं अपने माता-पिताकी, तुमलोगोंकी, भाइयोंकी तथा अपने प्राणोंकी रक्षा करना भी उतना आवश्यक नहीं समझता जितना रणमें अर्जुनकी रक्षा करना समझता हूँ—

न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे॥

वृन्दावनमें तो हजारों ग्वालबालोंके सखा बनकर रहे ही। उनसे निःसंकोच बर्ताव किया-कराया, खेलमें हारकर उनके घोड़े बनकर उन्हें पीठपर चढ़ाया। द्वारकामें द्वारकाधीश होनेके बाद भी सुदामा-सरीखे निर्धन ब्राह्मणको गले लगाया, अपने प्रेमाश्रुओंसे उसके चरण धोये। उसके पैर दबाये, उसके चरणामृतसे महलोंको पवित्र किया और उसके लाये हुए फर्शपर बिखरे चिउरोंके दानोंको

बटोरकर खड़े-खड़े ही खा गये तथा उनका स्वाद बताते हुए नहीं थके।

श्रीकृष्ण सच्चे गोसेवक थे। बरसों गायोंके पीछे-पीछे वन-वन भटके, उनकी सेवा की, उन्हें प्यार दिया, उनका प्यार लिया। उनका दूध पिया और उनको अपना स्वरूप दे दिया।

श्रीकृष्ण घोड़ा हाँकनेकी कलामें परम निपुण थे। इन्हींके अश्व-संचालन-कौशलने भीष्म, द्रोण, कर्णादिके भीषण बाणोंसे अर्जुनको सदा बचाया था। इनके सारथीपनकी कुशलताको देखकर दोनों ओरकी सेनाके सभी प्रमुख योद्धा चकित हो गये थे। श्रीकृष्ण परम नीतिज्ञ, राजनीति-विशारद, कूटनीतिके परम ज्ञाता थे। इन्होंने युद्धमें समय-समयपर पाण्डवोंको नीति-शिक्षा देकर महान् विपत्तियोंसे बचाया था। इस कार्यमें इनकी निपुणता प्रसिद्ध ही है। श्रीकृष्ण बहुत बड़े वाग्मी थे। इनके भाषण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते थे। जब ये दूत बनकर कौरव-दरबारमें गये थे, तब बहुत बड़े बूढ़े ज्ञानी ऋषि-मुनि इनके भाषण सुननेके लिये बड़ी दूर-दूरसे वहाँ पधारे थे।

श्रीकृष्णकी शरणागत-वत्सलता प्रसिद्ध है। इन्होंने अनन्यशरणमें आये हुए पुरुषके समस्त पापोंके नाश करनेका जिम्मा लेनेकी खुली घोषणा की है।

श्रीकृष्ण बड़े ही विनोदी हैं; बालकपनमें ग्वाल-बालोंके साथ, गोप-सुन्दरियोंके साथ इनका विनोद चलता था। रुक्मिणीजीसे एक दिन ऐसा विनोद किया कि उनको मूर्छा आ गयी। भीमसेनके साथ इनका हँसी-मजाक खूब चलता था। इनके स्वभावमें ही विनोदप्रियता थी। ये सदा ही हँसमुख ही रहते थे।

इनकी रसिकता परम प्रसिद्ध है। ये स्वयं रसरूप हैं। रसराज हैं। रसपूर्ण हैं। इनका व्रज रसपूर्ण है; माता-पिता रसपूर्ण हैं, सखा-मित्र रसपूर्ण हैं, गोप-रमणियाँ तो रसकी अनन्त सुधासागर ही हैं। करोड़ों-करोड़ों भाग्यवान् नर-नारी इन रसराजकी रसोपासनासे अपनेको धन्य कर चुके हैं।

श्रीकृष्ण जगद्गुरु

अब थोड़ा-सा इनके 'जगद्गुरु' रूपपर विचार करें। वैसे तो ये स्वरूपसे ही नित्य जगद्वन्द्य जगद्गुरु हैं। पर इनकी 'गीता' ऐसी विचित्र वस्तु है कि उसने समस्त विश्वको सदाके लिये इनका शिष्य बना दिया है। इनकी वह भगवद्गीता अनन्त अर्थमयी है। जो जिस भावसे उसे देखता है, उसको वही भाव गीतामें मिल जाता है तथा गीतासे ही उसका कार्य सफल होता है। बंगालके क्रान्तिकारी त्यागमूर्ति नवयुवकोंके एक हाथमें बम तथा दूसरेमें गीता रहती थी। बड़े-बड़े धनी गृहस्थोंका पथ-प्रदर्शन गीता करती है और अरण्यवासी सर्वत्यागी विरक्त संन्यासीको भी गीता ही मार्ग-दर्शन कराती है। शासनभारके उत्तरदायित्वको लिये हुए राजपुरुष भी गीताकी शरण लेते हैं और त्यागी-संन्यासी भी गीतासे ही प्रकाश प्राप्त करते हैं। गीताके हजारों भाष्य, अनुवाद विविध भाषाओंमें हैं और अभी हुए ही चले जा रहे हैं। गीतामें ही सबको अपने सिद्धान्तका मूल दिखलायी देता है। सांख्य, योग, वेदान्त, उपासना, राजनीति, समाज-नीति सभीके मूल तत्त्व, सरल संक्षिप्त व्याख्यासहित इसमें हैं। ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, कर्मसंन्यास, नैष्कर्म्य, सर्व-धर्म-संन्यास, द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि सभी मतोंके माननेवाले आचार्यों तथा उनके अनुयायियोंने गीतासे ही अपने मतकी पुष्टि की है। 'प्रस्थानत्रयी'में गीताके बिना काम नहीं चलता। आज भी विद्वानों एवं राजनीतिक महारथियोंका तथा अन्य क्षेत्रके लोगोंका भी काम गीताके बिना नहीं चलता। लोकमान्य तिलक महाराजने कारागारमें गीतापर 'गीतारहस्य' नामक विशाल भाष्य लिखा। महात्मा गाँधीजीने 'अनासक्ति-योग' लिखा, संत बिनोवाने 'गीताप्रवचन' लिखा, श्रीजयदयालजीने 'गीता-तत्त्वविवेचनी' टीका लिखी। न मालूम कितने ग्रन्थ और लिखे गये तथा लिखे जा रहे हैं। कितने पद्यानुवाद हुए तथा हो रहे हैं। अभी-अभी हमारे डॉ० श्रीहरिवंशरायजी बच्चन—हिंदीके प्रसिद्ध कविने अवधी भाषामें 'जनगीता' लिखी है, जो दिल्लीसे प्रकाशित हुई है। अबतक अनेकों ऋषि, महर्षि, आचार्य, कवि, मनीषी हो गये, परंतु रणक्षेत्रमें सारथीके रूपमें हाथमें चाबुक लिये और घोड़ोंकी लगाम थामे रथपर बैठे श्रीकृष्णसे कही गयी इस छोटी-सी गीताकी जैसी कोई भी पुस्तक आजतक नहीं निकली। प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीशंकराचार्य-सदृश संसारके सर्वमान्य अद्वितीय दार्शनिक महापुरुषने भी गीताकी शरण ली और अपने मतको गीताके अनुकूल सिद्ध करनेमें ही अपने सिद्धान्तकी सफलता समझी। श्रीशङ्कराचार्यने गीताकर्ता श्रीकृष्णको ईश्वर न माननेवालों-

को अपने गीताभाष्यमें 'मूर्ख' कहा है। और उन्हींके अनुयायी श्रीमधुसूदन सरस्वतीने तो 'वंशीविभूषितकर' श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य तत्त्वके जाननेसे भी इन्कार कर दिया और यह स्पष्ट कह दिया कि 'जो लोग श्रीकृष्णके प्रमाणित माहात्म्यको नहीं सहन कर सकते, वे नरकगामी होंगे।'

वर्तमान युगके असंख्य देशी-विदेशी प्रसिद्ध विद्वानोंने, जिनमें लोकमान्य तिलक, श्रीअरविन्द, महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा थारो, सर एडविन आरनाल्ड, श्रीआगस्ट विल्हेल्म वान श्लीगल, श्रीविल्हेल्म वान हुम्बोल्ट, श्री जे० एम्० फर्क्यूहर, श्रीएफ० टी० ब्रुक्स आदि अनेकों नाम गिनाये जा सकते हैं—गीताकी महान् प्रशंसा की है और उसको अपना पथ-प्रदर्शक माना है।

जननेता और सुधारक

यह सब कुछ होनेके साथ ही श्रीकृष्णको 'पूँजीपति कंस' तथा उसके अनुयायियोंके विरोधी 'जननेता' भी कह सकते हैं, जिन्होंने महान् क्रान्ति करके अत्याचारीका सपक्ष विनाश किया और उग्रसेनको राजा बनाकर मानो जन-राज्यकी स्थापना की तथा देशको आसुरी अधिकारसे मुक्त किया। श्रीकृष्ण 'समाजसुधारक' भी हैं। उन्होंने गोवर्धन-पूजाकी नयी प्रथा चलायी। और भी बहुत सुधार किये और दृढ़ताके साथ उनका पालन किया-कराया। गरीबोंके साथ मिलकर रहनेमें उनको सदा ही आनन्द आता था। इससे भी वे गरीबोंके बन्धु माने जाते हैं।

स्त्री-जातिके रक्षक

वे स्त्रीजातिके भी बड़े रक्षक थे तथा उनका सम्मान करते थे। व्रजकी गोपरमणियाँ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। एक बड़ी विचित्र घटना है। प्राग्ज्योतिषपुरमें १६००० राजकन्याएँ कैद थीं। श्रीकृष्णने भौमासुरका वध करके उन कन्याओंको छुड़ाया। पर उनसे अब विवाह कौन करता? अतः श्रीकृष्णने उन सब कन्याओंपर दया करके उन्हें अपनाया तथा स्वयं उनको अपनी रानी बनाना स्वीकार किया।

तामस भावोंकी भी सुन्दर अभिव्यक्ति

श्रीकृष्णके अनन्त सद्गुण हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है। पर जब वे पूर्ण मानव हैं, पूर्ण भगवान् हैं, तब उनमें 'तामसी' कहे जानेवाले भावोंका भी समावेश होना चाहिये; वे स्वयं ही कहते हैं—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान् विद्धि ....॥

'जितने भी सात्त्विक, राजस, तामस भाव हैं—सब मुझसे ही होते हैं—ऐसा जानो।'—तब बेचारे ये राजस, तामस भाव कहाँ जायँ? सो राजस भाव तो प्रवृत्तिमें है ही। तामस भावोंमें काम, क्रोध, लोभ, भय, चोरी, परपीड़न, मिथ्याभाषण आदि माने जाते हैं। अतः श्रीकृष्णमें भी काम है—वे अपने भक्तोंकी-प्रेमियोंकी सदिच्छा पूर्ण करनेकी सदा कामना करते हैं। यह उनका 'काम' है। बाललीलामें गोदसे उतार देनेपर मातापर क्रोध करते हैं तथा दहीका मटका फोड़ डालते हैं यह 'क्रोध' है। राक्षसों-असुरोंपर क्रोध करके वधके द्वारा उनका उद्धार करते हैं, यह भी 'क्रोध' है। यशोदा मैयाका स्तन-पान करनेसे कभी अघाते ही नहीं, और प्रेमीजनोंको सुख देनेसे कभी तृप्त होते ही नहीं, यह उनका 'लोभ' है। माताकी छड़ी तथा लाल आँखें देखकर भयभीत हो आँखोंमें आँसू भर लेते हैं—और भाग छूटते हैं, यह उनका 'भय' है। अपनी जादूभरी तिरछी नजरसे देखकर और मुरली-ध्वनि सुनाकर—सबके चित्तवित्तकी नित्य चोरी करते रहते हैं, यह उनकी 'चोरी' है। अथवा गोपीजनोंके मनमें जब श्रीकृष्णको माखन खिलानेकी नयी पद्धति आती है और वे यह चाहती हैं कि श्रीकृष्ण हमारे घरोंमें चोरीसे आकर घुस जायँ और हम उन्हें देखती रहें—इस प्रकार उनके मनोंमें इच्छा उत्पन्न करके उन्हींकी इच्छापूर्तिके लिये उनके घरोंसे माखन चुराकर खाना भी 'चोरी' है। प्रेमियोंको चिर-कालतक विरह-यातनाका सुख देते रहते हैं, यह उनका 'परपीडन' है। और प्रेमरसकी वृद्धिके लिये वाक्छल करना—'मिथ्याभाषण' है। अथवा स्वयं स्वरूपतः कुछ भी नहीं खानेवाले होनेके कारण मैयासे कहते हैं 'मैंने मिट्टी नहीं खायी'—यह भी मिथ्याभाषण है।

उपसंहार

श्रीकृष्णके अनन्त गुणोंका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि जिस भारतभूमिमें भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए, उसीमें आज हम भी जीवन धारण कर रहे हैं और तुच्छ मच्छरके अनन्त आकाशमें उड़नेके सदृश उनके गुण-गानका प्रयास कर रहे हैं। आप लोगोंने मुझको कृपापूर्वक यह सौभाग्य प्रदान किया। इसके लिये मैं आपके प्रति हृदयसे कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और आज्ञानुसार श्रीकृष्णमन्दिरका उद्घाटन करता हूँ।

बस, आपलोग यह आशीर्वाद दें—

जाहि देखि चाहत नहीं, कछु देखन मन मोर।
बसै सदा मेरे दृगन, सोई नंद-किसोर॥
तन-मन सब लिपटे रहैं नित प्रियतम के अंग।
भुक्ति मुक्ति की कल्पना करै न यह सुख भंग॥
भूलि जाय सुधि जगत की भूलै घरकी बात।
हिय सौं हिय लागौ रहै बिनु बाधा दिन रात॥
इन्द्रिय-मन-बुधि-आतमा, बनैं स्याम के धाम।
सब मैं सदा बसौ रहै प्रियतम मधुर ललाम॥

'बोलो आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!'

आज मेरा जीवन भगवान्के अस्तित्वको अभिव्यक्त कर रहा है

मैं सम्पूर्ण भयों और संदेहोंको एक ओर रखकर भगवान्के अडिग विश्वासके साथ आजका दिन आरम्भ करता हूँ। मैं भगवान्की तथा उनकी शक्तिकी सीमा निर्धारित नहीं करता। 'मुझे पहले मार्ग दीख जाय और भगवान्की मंगलमयताका प्रमाण प्राप्त हो जाय'—यह तर्क भगवान्के सम्बन्धमें संदेह व्यक्त करता है। मैं अपने हृदयमें इस विचारको उदय ही नहीं होने देता। संतोंने एक स्वरसे भगवान्के अस्तित्व एवं उनकी शक्तिपर विश्वास करनेको कहा है। आज मैं इस विश्वासको सक्रिय रूप देता हूँ।

आज मैं अपने समस्त विवेक, विचार और शक्तिके साथ भगवान्के अस्तित्वपर विश्वास करता हूँ, मैं भगवान्की नित्य सन्निधि एवं असीम शक्तिपर विश्वास करता हूँ।

आज मैं अपने मनको भगवान्के चिन्तनसे भरता हूँ और अशान्तिके स्थानपर शान्तिकी तथा अस्तव्यस्तताके स्थानपर सुव्यवस्थाकी आशा करता हूँ।

आज मैं भगवान्के सौहार्दपर विश्वास करता हूँ और अभावके स्थानपर प्रचुरताके दर्शन करता हूँ।

आज मैं भगवान्के प्रेमसे अभिषिक्त होकर पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वस्थता एवं पूर्ण समृद्धिका अनुभव करता हूँ। अब मुझमें कोई भय नहीं, कोई संदेह नहीं, कोई अभाव नहीं, कोई प्रतिकूलता नहीं;—मुझे केवल मंगल-ही-मंगलके दर्शन हो रहे हैं।

आज मेरा जीवन भगवान्के अस्तित्वको अभिव्यक्त कर रहा है।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आदर्श मित्र

हनुमानबक्सजीका बड़ा कारोबार था, उनके एक मित्र बिलासराय भी व्यापार करते थे। उनका भी व्यापार ठीक चलता था। दोनोंमें बड़ा प्रेम था। समय बदलता रहता है; स्थिति परिवर्तनशील होती है। बिलासरायजीका व्यापार ढीला चलने लगा। दो-तीन ब्याह-शादीके बड़े खर्चके प्रसंग आ गये। इज्जतके अनुसार खर्च करना पड़ा। ऋण हो गया। एक निकटस्थ सम्बन्धी थे। उनके लगभग पैंतालीस हजार रुपये इनमें बाकी थे। वे सम्पन्न थे और यह भी जानते थे कि इनके पास रुपये इस समय नहीं हैं। होते तो ये तुरंत दे देते। बड़े ईमानदार हैं। परंतु किसी कारणवश वे इनपर बहुत नाराज थे और द्वेषवश इन्हें तकलीफ देना चाहते थे। उन्होंने नालिश करके किसी प्रकार गुपचुप डिक्री करवा ली। बिलासरायजीको नालिश-डिक्रीका पता ही नहीं लगने दिया। डिक्री जारी करवा ली और रुपये न मिलने-पर गिरफ्तारीका वारंट भी निकलवा दिया। उस दिन किसी एक विवाहमें बिलासरायजी गये हुए थे। संध्याके समय जब कि सैकड़ों पुरुष बारातमें आये हुए हों उन सबके बीचमें उन्हें गिरफ्तार करनेकी योजना थी। सारी व्यवस्था कर ली गयी। हनुमानबक्सजीको दुपहरके बाद इसका पता लगा। उनको बड़ी चिन्ता हुई। डिक्रीके कितने रुपये हैं, इसका उन्होंने पता लगाया और रुपये कोर्टमें जमा करवाकर रसीद तथा वारंटकी वापिसीका आदेश लेकर ठीक उस समय बिलासरायजीके उक्त सम्बन्धीके घर पहुँचे जिस समय वह वारंटके साथ पुलिसको लेकर बारातके स्थानपर जा रहे थे। रुपयोंकी रसीद दिखायी और वारंट वापिसीका आदेश दिखलाया। उक्त सम्बन्धी तो यह सब देख-सुनकर भौंचक्का-सा रह गया। हनुमानबक्सजीने नम्रताके साथ कहा—'भाई! तुम इतने निकट सम्बन्धी तथा घरमें सुसम्पन्न होकर भी बिलासराय-सरीखे ईमानदार सज्जनको बिना उसे जनाये धोखेसे डिक्री करवाकर आज पकड़वाने जा रहे थे, तुम्हारा यह काम हम सभीके लिये लज्जाकी चीज है; ऐसा नहीं करना चाहिये।' उसने संकोचमें पड़कर सिर नीचा कर लिया!

बिलासरायजीको हनुमानबक्सजीने कुछ नहीं कहा। वे भी बारातमें गये। सब काम ठीक हो गया। बिलासरायजीको कुछ पता ही नहीं कि क्या हुआ है। डिक्री भरपाई करके उक्त सम्बन्धीने रजिस्ट्रीद्वारा बिलासरायजीके पास भेजी, तब उन्हें पता लगा, पर यह नहीं मालूम हुआ रुपये उनकी ओरसे किसने जमा करवाये। वे उक्त सम्बन्धीसे मिले, तब उसने बतलाया कि मैं तो नीचतावश आपको बारातके समय हजारों आदमियोंके बीच पकड़वाकर बेइज्जत करना चाहता था। परंतु हनुमानबक्सजीने ऐसा नहीं होने दिया। पता लगते ही रुपये पूरे जमा कराके रसीद ला दी और वारंट खारिज करवा दिया। लगभग बावन हजार रुपये थे।

उस समय बिलासरायजीको कितनी प्रसन्नता हुई और मित्र हनुमानबक्सजीके प्रति उनका हृदय सदाके लिये कितना कैसा कृतज्ञ हो गया, इसका पूरा अनुमान भी हम नहीं लगा सकते। धन्य मैत्री!

—ब्रजमोहन गुप्त

(२)

भारतका संस्कार-दर्शन

विदेशसे लौटे हुए और अस्पतालमें सर्जनके पदपर काम करनेवाले मेरे एक पड़ोसी डाक्टरने अपनी विदेशयात्राका एक प्रसंग सुनाया। उसे यहाँ उन्हींके शब्दोंमें उद्धृत कर रहा हूँ—

मैं इंग्लैंड पहुँचा, उस समय 'कहाँ रहूँगा' यह निश्चय नहीं था। सभी छात्रालयोंमें जगह भर चुकी थी। सौभाग्यवश मुझको वहाँके एक संस्कारी कुटुम्बमें 'पेइंग गेस्ट' के रूपमें स्थान मिला। थोड़े ही दिनोंमें मैं उस कुटुम्बमें दूधमें चीनीकी तरह घुल मिल गया।

छुट्टियोंमें एक दिन मैं उक्त कुटुम्बके मुखियाके साथ ग्राउण्डमें सूर्यस्नान करता हुआ गप्पें मार रहा था। बातों-ही-बातोंमें उन्होंने कहा—"आपसे पहले एक मद्रासी भाई हमारे कुटुम्बमें 'पेइंग गेस्ट' के रूपमें रहे थे। उन्होंने हमें बहुत तरहसे परेशान किया। उनमें पान खानेकी कुटेव थी। 'कुटेव' इसलिये कि पान खाकर कमरेकी सारी दीवालोंको रँग डालते। घरके लोगोंके साथ अवाञ्छनीय बर्ताव करते। घरकी व्यवस्थामें साथ देनेके बदले उल्टी घरमें अव्यवस्था उत्पन्न कर देते। बातचीत-जितनी भी सभ्यता नहीं दिखलाते। इसलिये हारकर लाचारीसे हमें उनको अलग करना पड़ा। तबसे यह गाँठ बाँध ली थी कि किसी भी भारतीयको 'पेइंग गेस्ट' के रूपमें नहीं रखना। परंतु आपके विवेकपूर्ण तथा सभ्यताभरे बर्ताव तथा वाणीसे आपको 'पेइंग गेस्ट' के रूपमें रखनेके लिये मैं ललचा उठा और सचमुच आप इस कुटुम्बके एक सहृदयी सदस्य बन गये हैं।"

मैंने उनकी इस भावनाके लिये आभार माना और मनमें निश्चय किया कि उनके भारतसम्बन्धी ऐसे पूर्वग्रहको अपने संस्कारभरे बर्तावसे मुझे दूर कर देना है। तभीसे मैं अपने बर्तावके सम्बन्धमें विशेष सावधान हो गया। मैंने उनके प्रत्येक कार्यमें सहयोग देना आरम्भ किया। मेरे कमरेकी सफाईका काम मैंने स्वयं अपने जिम्मे ले लिया। उन कुटुम्बके लोगोंके साथ मैं घरकी सफाई-सुधराईमें तथा वृक्षोंमें जल देनेमें सहृदयतासे सहयोग देने लगा। यों मैं उस कुटुम्बमें ओतप्रोत हो गया। कुटुम्बके बालक भी मेरे साथ खूब हिलमिल गये।

अन्तमें मेरा अभ्यास समाप्त होनेपर मैं इंग्लैंडसे चलने-को तैयार हुआ। उस कुटुम्बसे बिछुड़ते समय मुझे ऐसा लगा, मानो मैं अपने ही कुटुम्बसे बिछुड़ रहा हूँ। किंतु 'मेरी' और 'विलियम' तो मुझे पकड़कर रोने लगे। गद्गद स्वरसे मैंने उस कुटुम्बके मुखियासे आज्ञा माँगी। आँसू छलकती हुई आँखोंसे उन्होंने मुझसे कहा—

'भारतमें मैं आपकी सफलता चाहता हूँ, आपने प्रेमभरे बर्तावसे अपने भारतीयोंके प्रति मेरे दुर्भावको दूर कर दिया है। अबसे मैं किसी भी भारतीयको अपने घरमें स्थान देते नहीं हिचकूँगा।'

मैंने कहा—'मैं आपका तथा आपके सारे कुटुम्ब-का आभार मानता हूँ। मैंने तो कुछ किया ही नहीं; केवल अपने देशके संस्कारके अनुसार आचरणमात्र किया है। इससे आपका दुर्भाव दूर हो गया—यह मेरे लिये आनन्द और सौभाग्यकी बात है।' और अश्रुसिक्त नेत्रोंसे मैंने उस कुटुम्बसे विदा ली।

—जसवंत सायर

(३)

मूल्यवान् आतिथ्य

ऐसा कौन व्यक्ति है जिसे जीवनमें कभी आतिथ्य न उपलब्ध हुआ हो। पर सभी आतिथ्य मूल्यवान् नहीं होते। वास्तवमें मूल्यवान् आतिथ्य वही है जिसमें आतिथ्य-कर्ताके हृदयका शुद्ध प्रेम सम्मिलित हो। ऐसा आतिथ्य कभी-कभी भाग्यसे ही प्राप्त होता है।

कई वर्ष पूर्वकी बात है। हम चार आदमी नैमिषके लिये चले। यद्यपि मेरे यहाँसे नैमिष जानेके लिये रेल आदिका अच्छा प्रबन्ध है, पर हमलोगोंने यह यात्रा साइकिलसे ही करनेका निश्चय किया। हमारे यहाँसे नैमिष लगभग ४५ मील है। हम लोग मध्याह्नका भोजन करके और संध्याका भोजन साथमें बाँधकर लगभग दो बजे घरसे चल पड़े। विचार था कि आज रात्रिमें मिश्रितमें विश्राम करके प्रातःकाल नैमिष पहुँच जायँगे। पर संयोगवश जब मिश्रित लगभग ५-६ मील रह गया, तभी सूर्यास्तका समय हो गया। अब हमलोगोंमेंसे एक आदमीका विचार हुआ कि यहीं ठहरा जाय और एक दूसरे आदमीका निश्चय था कि आज मिश्रित चलकर ही विश्राम करेंगे। दोनोंके मतभेदने धीरे-धीरे कलहका रूप लेना आरम्भ कर दिया। विवश होकर मुझे भी उसमें भाग लेना पड़ा।

मैंने उन भाईसे निवेदन किया, जो मिश्रित पहुँचकर ही विश्राम करनेका अधिक बल दे रहे थे कि 'आप अपनी बात छोड़ दें। असमय हो चुका है। एक साथीका हृदय भयभीत है, वह रातमें चलनेमें अपनी असमर्थता प्रकट कर रहा है, आपको क्या अधिकार है कि उसे रात्रिमें चलनेके लिये विवश करें। यदि कोई दुर्घटना हो जाय तो उसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर आयगा। अतएव आप अपना आग्रह छोड़ दें और एक साथीके नाते उसका साथ देनेमें अपना अपमान न समझें।' थोड़ी बहसके बाद वे राजी हो गये।

हमलोग रातभर ठहरनेके विचारसे निकटवर्ती गाँवको गये। देखा—एक दरवाजेपर प्रकाश जल रहा है, दस-पाँच आदमी बैठे हुए हैं। गृहस्थ भी सम्पन्न व्यक्ति प्रतीत हुए, द्वारपर स्थान पर्याप्त था। हमलोगोंने उनसे वहाँ ठहरनेकी प्रार्थना की। उन्होंने निकटवर्ती दूसरे गाँवकी ओर संकेत कर दिया कि ठहरनेके लिये आप वहाँ जायँ। यद्यपि उनका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। पर यह सोचकर कि यह तो अपनी-अपनी प्रवृत्ति है, ये नहीं स्थान देना चाहते; संतोष किया और वहाँसे चल पड़े। उन आदमियोंके बीचमें बैठा हुआ एक आदमी भी हमलोगोंके साथ उठकर चला आया। जब वह उन महाशयके द्वारसे आगे आ गया तब उसने कहा—भाई साहब! हमारे यहाँ ठहरनेमें आपको कष्ट होगा, पर यदि आप कष्ट सहन करके ठहरना चाहें तो चलें। मैंने कहा—हम अवश्य आपहीके घरपर ठहरेंगे। चाहे आपके यहाँ हमें रातमें भीजना ही क्यों न पड़े। वर्षाकाल था।

हमलोगोंने जाकर उसका घर देखा। साधारण गृहस्थ था। दरवाजेपर एक छप्पर पड़ा हुआ था। हमलोगोंको ठहरनेके लिये उसने वही स्थान दिया।

जब हमलोग यथास्थान बैठ चुके। तब उसने भोजन बनानेके लिये आग्रह किया; क्योंकि वह जातिका गड़रिया था और हमलोग ब्राह्मण। पर हमलोगोंके पास भोजन-सामग्री बँधी हुई थी अतएव हमलोगोंने इन्कार कर दिया। उसने बहुत आग्रह किया कि आप यह भोजन कलके लिये रख लें, आज हमारा ही अन्न खायँ पर हमलोगोंने यह नहीं स्वीकार किया; क्योंकि भोजन-सामग्री पर्याप्त थी, जिसे हम दो दिनमें भी नहीं समाप्त कर सकते थे। अन्तमें बहुत अनुनय करनेपर उसने भोजन बनवानेका आग्रह छोड़ा, पर एक लोटा दूध उसने फिर भी दिया ही और आग्रह किया कि इसे आप अवश्य स्वीकार करें। उसके घरमें इतना ही दूध होता था।

—त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी 'चंचरीक'

(४)

दयाकी देवी

सन् १९५२ में मेरे हाथका फ्रेक्चर हो जानेसे मैं बम्बईके एक अस्पतालमें भरती हुआ था। वहाँ बना हुआ एक प्रसङ्ग लिख रहा हूँ—

मेरे पलंगसे चौथे या पाँचवें पलंगपर एक कृशकाय, फीके और निस्तेज चेहरेवाला युवक था। उसे देखनेपर ऐसा लगता था कि वह बीमारीसे पहले सुदृढ़ और सुन्दर होगा। हमारे वार्डकी जिम्मेवारी जिसके ऊपर थी वह सिस्टर (नर्स-परिचारिका) वार्डके दूसरे रोगियों-की अपेक्षा उस युवकका विशेष ध्यान रखती, ऐसा लगता था। कभी-कभी तो उसकी 'ड्यूटी' पूरी होनेके बाद भी वह आती और युवकके पास बैठ जाती।

सिस्टरके इस बर्तावसे रोगियोंके मनमें ईर्ष्याकी आग सुलग उठी और उसने दोनोंके सम्बन्धको अवाञ्छित रूप दे दिया।

यह बात प्रधान डाक्टरतक पहुँची। डाक्टर एक दिन हमारे वार्डमें आये और बोले—'अभी कुछ दिनों-से आपलोगोंके मनमें जो 'सिस्टर'के प्रति असंतोष हो गया है, उसका मुझको पता लगा है और आप लोगोंने उनके सम्बन्धको जो अवाञ्छित स्वरूप दे डाला है, उससे मुझको बहुत दुःख पहुँचा है। हमारा

मानस ही आज इतना विकृत हो गया है कि किसी भी स्त्री-पुरुषके पवित्र सम्बन्धको भी हम उल्टे चश्मेसे देखने लगते हैं। 'सिस्टर' तो दयाकी देवी है। 'सिस्टर'की ममता उस युवकके प्रति क्यों अधिक रहती है, उसकी सारी विगत सुननेपर तो आपलोगोंने उनके सम्बन्धको जो बुरा रूप दे दिया है उसके लिये अवश्य पश्चात्ताप होगा।'

हम सबने डाक्टरकी विगत सुनानेके पहले ही अपनी 'दृष्टि'के लिये क्षमा माँगी और आगे बात चलानेके लिये प्रार्थना की।

डाक्टरने कहा—'इस युवकको बचपनसे ही खूब सिगरेट-बीड़ी पीनेकी आदत थी। इस व्यसनका परिणाम भयंकर दमाकी बीमारीके रूपमें परिणत हो गया। युवकके कुटुम्बमें उसके सिवा और कोई नहीं है। दमाकी बीमारीके कारण उसे नौकरीसे हाथ धोना पड़ा। जब रोग बहुत बढ़ गया, तब उसे इस अस्पतालमें 'फ्री पेशंट' निःशुल्क रोगीके रूपमें भरती किया गया। उसकी आर्थिक तथा कौटुम्बिक परिस्थिति देखकर 'सिस्टर'को उसके प्रति ममता उत्पन्न हो गयी और उसने युवककी सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली। युवक निःशुल्क रोगी होनेके कारण उसे अस्पतालके खर्चकी तो चिन्ता नहीं थी, परंतु उसके व्यक्तिगत खर्चकी जिम्मेवारी भी 'सिस्टर'ने ले ली।

एक दिन दमाका बहुत भारी दौरा आ गया। उस समय युवकको तीन दिनोंतक 'गेस' पर रक्खा गया। इन तीन दिनोंमें बिना रात-दिन देखे—खाने-पीनेकी सुधि भूलकर 'सिस्टर' युवककी सार-सँभालमें ही रही।

युवकके जीवनकी रक्षा होना इस 'सिस्टर'की ममता और अथाह परिश्रमका ही परिणाम है। एक दिन युवक और सिस्टर बैठे थे। युवककी आँखोंमें आँसू आ गये। 'सिस्टर'ने पूछा—'भाई! रो क्यों रहे हो?'

युवकने कहा—'बहिन! मुझे बहुत बार आपका विचार आता है, न तो कभी आँखोंकी पहचान थी, न आप मेरे सगे-सम्बन्धीमें ही कोई थीं; इतनेपर भी आपने मेरे प्रति जो माया-ममता दिखलायी, उसका ऋण मैं किस जन्ममें चुका सकूँगा?'

'सिस्टर' बोली—'भाई! यों मनमें संकोच क्यों करते हो? क्या मैंने बदला पानेकी आशासे आपकी चाकरी की है? इसपर भी आपको ऋण चुकाना ही हो तो एक काम करके चुका सकते हो। मैं माँगूँगी सो दोगे?'

'बहिन! मेरे पास देने योग्य क्या है?'

'आप आजसे प्रतिज्ञा कर लें कि अबसे आगे मैं कभी सिगरेट-बीड़ीको हाथसे भी नहीं छूऊँगा। बोलो—देते हो वचन?'

युवक गद्गद हो गया और—'बहिन!' शब्दसे सिवा उसके मुखसे एक भी शब्द और नहीं बोला गया।

इस प्रकार 'सिस्टर'ने युवकका जीवन तो बचाया ही, साथ-ही-साथ उसे व्यसनकी नागपाशसे भी छुटकारा दिलाया।

सारी बातें सुनकर, और उन दोनोंके पवित्र सम्बन्धके बाबत हमलोगोंने गंदी कल्पना की, इससे हमें बड़ी शरम आयी और एक अनजान युवकके लिये इतना त्याग करनेवाली 'दयाकी देवी'के प्रति हम सब लोग मन-ही-मन प्रणत हो गये। —मधुकान्त भट्ट

(५)

आदर्श भाई

नागरमलजी और नन्दकिशोरजी सगे भाई थे। और भी भाई थे। इनका अपने एक सम्बन्धी परिवारकी हिस्सेदारीमें कलकत्तेमें बड़ा कारोबार था। नागरमलजी देश रहते और माता-पिताकी सेवामें अधिक समय लगाते। ये बड़े विद्वान्, संतोषी और शुद्ध आचरणके पुरुष थे। हिसाब-किताबमें भी बहुत चतुर थे। सालमें एक बार कलकत्ते जाकर सारा तलपट जोड़ आते। इनके बाल-बच्चे बहुत थे। श्रीनन्दकिशोरजी बड़े मिलनसार, कार्यकुशल, लोकप्रिय तथा चतुर व्यापारी थे।

व्यापारका काम कलकत्तेमें ये ही देखते थे। ये बड़े उदारहृदय पुरुष थे। इनके मनमें आया, बड़े भाई नागरमलजीके खर्च अधिक हैं, संतान ज्यादा हैं, उनके व्याह-शादीमें खर्च अधिक होगा। अतएव उन्होंने उनसे कुछ बिना ही कहे अपने हिस्सेमेंसे अमुक अंश कम करके उनका बढ़ा दिया। हजारों रुपये और आगे चलकर लाखों रुपये वार्षिकका अन्तर पड़ गया। पहले नागरमलजीसे इसलिये नहीं कहा कि वे वैसा करने नहीं देंगे। क्योंकि वे भी बड़े उच्चाशयके पुरुष थे। नन्दकिशोरजीके इस आदर्श त्याग और उदारताकी क्या प्रशंसा की जाय ? भगवान् ही उनके इस सत्कार्यका महान् फल उन्हें देंगे।

—मोतीलाल शर्मा

(६)

रामनाम-महिमा

मैं बिहार प्रान्तका हजारीबाग जिलान्तर्गत गिरिडीह सब डिवीजनके थाना देवरी ग्राम बाराडीहका भूमिहार ब्राह्मण हूँ। मेरा लड़का रामप्रसाद बी० ए०की परीक्षामें असफल हो जानेके कारण दिनाङ्क २१।९।५४ को घर छोड़कर बाहर चला गया। मैंने अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसको ढूँढ़ा, लेकिन कहीं कुछ पता नहीं चल सका। मेरा परिवार शोक-सागरमें गोता लगा रहा था। मैं अनेकों प्रकारसे तन्त्र-मन्त्र आदि करवा रहा था, किंतु कोई भी फल नहीं हो रहा था। जब तन्त्र-मन्त्रसे कोई फल नहीं मिला, तब मैंने विश्वासके साथ सीतारामयुगल-मन्त्रका जप और भगवान्‌से विनय करना प्रारम्भ किया।

एक दिन मेरे मनमें इच्छा हुई कि मैं हरिद्वार जाकर पता लगाऊँ। पञ्चायत-परिषद्‌के सम्मेलनमें हजारीबाग गया और वहींसे मैं ऋषिकेश चला आया।

दिनाङ्क २६।६।५८ ई० को गीताभवन ऋषिकेशमें श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके एवं अन्य महात्माओंके भाषण सुने। शामको ८, ९ बजे गीता-भवनमें भाई पोद्दारजीका भाषण सुना। श्रीदशरथजी-द्वारा श्रवणकुमार-वध एवं रामनामका माहात्म्य भी सुना। राम-नामका माहात्म्य सुनकर मैंने यह संकल्प किया—मैं पूर्णमासीतक श्रीराम-नामका जप करूँगा। यदि रामनामकी इतनी बड़ी महिमा होगी तो मेरे लड़केका पता इसी बीचमें लग जायगा और यदि पूर्णमासीतक मेरे लड़केका कोई पता नहीं लगेगा तो मैं नास्तिक हो जाऊँगा। ऐसा मनमें ठानकर मैं गङ्गातटपर डेढ़ बजे राततक 'राम-जानकी'का जप किया। सुबह मेरी इच्छा स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गमें जानेकी हुई। मैं जानेहीवाला था कि उसी समय मेरा लड़का संन्यासी-भेषमें उधरहीसे जा रहा था। मैं उसे पहचान नहीं सका। कुछ दूर जाकर वह फिर लौट आया और मेरे पैरोंपर गिर पड़ा। मैंने जब उसे उठाया तो पहचान लिया।

राम-नामकी महिमाका प्रत्यक्ष प्रमाण मुझको मिल गया। मेरे दिलमें रामनामकी महिमाकी ज्योति जगमगा रही है और सदा जगमगाती रहेगी। —दुपलाल राय

(७)

तुरंत देह-परिवर्तन

(आँखों देखी सत्य घटना)

एक बारात मौजे केन्दुकीसे ग्राम निर्मोगा (जि० मुजफ्फरनगर) जा रही थी। इस बारातमें एक लड़का शोभाराम उम्र लगभग २४ वर्ष कौम त्यागी ग्राम बेहेड़ी जि० मुजफ्फरनगर रेलवे स्टेशन रोहाना कलाँको अपना रथ हाँककर ले जा रहा था। वह रथसे गिरा, रथका पहिया उसकी गरदनपरसे उतरा। नाक-मुँहसे रक्त बहने लगा। बेहोशीकी दशामें उसे रोहाना मिलके अस्पताल ले आया गया। यहाँपर रातके ११ बजे मर गया। उसी स्थानपर उसका दाह-संस्कार कर दिया गया।

उसी रातको ग्राम रसूलपुर (जाटान) में जि० मुजफ्फरनगर जो कि ग्राम बेहेड़ीसे चार मीलके फासले-

पर है, एक जाटका बच्चा चेचककी बीमारीसे गुजर गया। बच्चेकी आयु लगभग एक वर्ष थी। बच्चा सहसा रातके ४ बजे (मरनेके ३-४ घंटे पश्चात्) जी उठा। किंतु उस बालकने इस समयके पश्चात् माँका दूध पीना छोड़ दिया।

चार वर्षके पश्चात्

उस लड़केकी माँ उसे लेकर अपने मैके जा रही थी (ग्राम परई) में। मार्गमें वह स्थान पड़ता था जहाँ कि उपर्युक्त घटना (युवकका रथके द्वारा मरना) घटी थी। वहाँसे दो रास्ते जाते थे—एक ग्राम वेहेड़ीको और दूसरा ग्राम परईको। लड़केने कहा 'मैं यहाँ रथसे गिरा था, हमारे घरका रास्ता तो उधर (बेहेड़ी ग्रामकी ओर संकेत करके कहा) को है। माँ बच्चेकी बातपर ध्यान न देते हुए उसका हाथ पकड़ ग्राम परईकी ओर चल दी।

मार्च १९५८

केन कोआपरेटिव सोसायटीका कामदार श्रीजगन्नाथ-प्रसाद (बेहेड़ीनिवासी) एक दिन ग्राम रसूलपुर जाटान गया। वहीं जाटनीका लड़का, जिसकी आयु इस समय लगभग ५-६ वर्ष हो चुकी है, बच्चोंमें खेल रहा था। उसने पुकारा 'अरे ओ जगन्नाथ।' जगन्नाथने चौकन्ना होकर इधर-उधर देखा। कोई परिचित व्यक्ति दिखायी न पड़ा और वह चल पड़ा।

लड़केने पुनः पुकारा—'जगन्नाथ! यहाँ सुन।' उसने जगन्नाथसे राम-राम करके कहा—'मुझे बेहेड़ी ले चल।' जगन्नाथने कहा—'तू किसका लड़का है।' उस लड़केने प्रारम्भसे अन्ततक अर्थात् रथसे गिरकर मरनेतककी घटना सुनायी। जगन्नाथने आश्चर्यचकित हो पूछा—'फिर तू यहाँ कैसे आया?' लड़केने कहा—'फिर गिरकर मरनेके बाद मुझे और कोई जगह न मिली। यह शरीर खाली देख इसमें आ गया।'

श्रीजगन्नाथने यह पूरी घटना बेहेड़ी जाकर ग्रामवालोंको सुनायी। लड़केके ताऊ, चाचा आदि सम्बन्धी गाँव रसूलपुर गये। लड़केने उन सबको पहचाना और नाम लेकर राम-राम किया। लड़केके सम्बन्धियोंने उससे अनेक प्रश्न किये, जिनके उसने संतोषजनक उत्तर दिये।

उन ग्रामीणोंमेंसे एक व्यक्तिने (जो कि उसी रथमें सवार था और रथसे गिरनेके पश्चात् लड़केको रथमें लिटाया और सिर अपनी गोदमें रखे रहा था), पूछा—'मेरा नाम बतला।' लड़केने कहा—'नाम तो भूल गया; किंतु इतना याद है तुमने मुझे अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।'

वे उस लड़केको लेकर बेहेड़ी ग्राम चले। रोहाना मिल्स, स्टेशनपर आकर लड़केसे आगे-आगे चलनेको कहा गया। लड़का सीधा अपने घरपर पहुँचा। सबके यथोचित नाम लेकर राम-राम किया और यह भी जिद्द की कि मैं यहीं रहूँगा।

वह बच्चा आज भी जाटनीके घरकी रोटी नहीं खाता। उसके खानेका प्रबन्ध एक पड़ोसिन ब्राह्मणीके यहाँ है। उसने जीवित होनेके पश्चात् उस जाटनी (अपनी मौजूदा माँ) का दूध भी कभी नहीं पिया। *

* यह घटना मुझे एक मेरे विश्वसनीय मित्र चौ० काशीरामजी त्यागी बड़कलीनिवासी (बड़कली ग्राम बेहेड़ी ग्रामसे ३-४ फर्लांग दूर है) ने सुनायी। आप (चौ० काशीरामजी त्यागी) एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। जिला कांग्रेस कमेटी, मुजफ्फरनगरके उपाध्यक्ष, भ्रष्टाचार-निवारक समितिके सदस्य और डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक मुजफ्फरनगरके डाइरेक्टर हैं। मेरे साथ उनका तर्क अकाल मृत्युपर चल रहा था। उसी वार्तालापके बीच उन्होंने मुझे उपर्युक्त घटना सुनायी।

—रामस्वरूप शर्मा

सटीक सूरसागरके पदोंके खण्डशः प्रकाशन-योजनाकी पाँचवीं पुस्तक

अनुराग-पदावली (सरल भावार्थसहित)

आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २७२, पद-संख्या ३४८, श्रीमुरलीमनोहरका बहुरंगा आकर्षक चित्र; सुन्दर मुखपृष्ठ, मू० १), सजिल्द १।=), डाकखर्च ॥।=)।

इससे पहले सूर-विनयपत्रिका, सूर-राम-चरितावली, श्रीकृष्णबालमाधुरी और श्रीकृष्णमाधुरी—ये चार संग्रह सूर-काव्य-प्रेमियोंकी सेवामें प्रस्तुत किये जा चुके हैं । इस पाँचवें संग्रह 'अनुराग-पदावली'में जैसा कि इसके नामसे ही प्रकट है, केवल ऐसे पदोंका चयन किया गया है, जिनमें श्रीगोपाङ्गनाओंके श्रीकृष्णविषयक अनुरागकी चर्चा की गयी है। श्रीकृष्णानुरागिणी व्रजललनाओंके ये अनूठे प्रेमोद्गार सूरकी हृदयस्पर्शिनी वाणीसे प्रवाहित हुए हैं । एक-से-एक सरस एवं मार्मिक उक्तियाँ हैं; जिनका स्वाद उन्हें पढ़नेपर ही मिलता है; श्रीसूरदासजीने मानो उन व्रज-ललनाओंका हृदय ही खोलकर रख दिया है।

३४८ चुने हुए पदोंके इस संग्रहका प्रेमी पाठक समुचित आदर करेंगे, ऐसी आशा है।

गीता-दैनन्दिनी सन् १९५९ ई०

आकार २२×२९ बत्तीस पेजी, मूल्य साधारण जिल्द ॥=), बढ़िया जिल्द ॥।), डाकखर्च अलग।

इसमें हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी और नये भारतीय शक-संवत्की तिथियोंके सहित पूरे वर्षमें दैनिक क्रमसे सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता, तिथि, वार, घड़ी और नक्षत्रका संक्षिप्त पत्रक, अंग्रेजी दिनाङ्कोंका वार्षिक केलेण्डर, विनय, सबका कल्याण, सबसे सरल साधन—नामजप, बृहस्पतिजीका युधिष्ठिरको उपदेश, 'विनम्र संदेश' शीर्षक निवेदन, रेल, तार, डाक, इनकम-टैक्स, सुपरटैक्स, मृत्यु-करकी दरें, मापतौलकी सूची, मेट्रिक प्रणालीके माप-तौल, पुराने पैसेकी नये पैसेमें परिवर्तनसारणी, दैनिक वेतन और मकानभाड़ा चुकानेका नये पैसेमें नकशा, घरेलू ओषधियाँ, स्वास्थ्य-रक्षाके सस-सूत्र, भगवान् नारायणका सुन्दर चित्र, आरती तथा प्रार्थना दी गयी है।

☞ गीता-दैनन्दिनीके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है । अतः विक्रेता-बन्धुओंसे निवेदन है कि शीघ्र आर्डर देनेकी कृपा करें।

विक्रम सं० २०१५ का गीता-पञ्चाङ्ग थोक लेनेपर लगभग आधे दामोंमें

(सम्पादक—ज्यौतिषाचार्य ज्यौतिषतीर्थ पं० श्रीसीतारामजी झा, काशी)

सं० २०१५ के पञ्चाङ्गको जनताने इतना पसंद किया कि थोड़े ही दिनोंमें इस पञ्चाङ्गकी तीन संस्करणोंमें पैंसठ हजार प्रतियाँ छापनी पड़ीं। इस पञ्चाङ्गमें नवप्रचलित शकाब्दकी तिथियाँ, पञ्चशलाकादि चक्र, ग्रहण, संवत्सरादिफल, संक्षिप्तकाल-विवरण, कालमान, संवत्सरोंके नाम, पञ्चाङ्ग-परिचय, वार-प्रवेशका ज्ञान, सूर्य-सिद्धान्तीय गणितसिद्ध विवाहादि मुहूर्त, यात्रा-विचार, लग्नसारिणी, देशान्तरसारिणी, सूर्योदयास्त—समयके ज्ञानकी सरल रीति आदि अनेक पञ्चाङ्गोपयोगी बातोंके अतिरिक्त रेल-भाड़ा, पार्सलभाड़ा, रेल-डाक-तार आदिके नियम, इनकमटैक्स-सुपरटैक्सकी दरें आदि उपयोगी बातें भी दी गयी हैं।

सफेद ग्लेज कागजोंपर छपे हुए तथा सुन्दर टाइटलयुक्त इस पञ्चाङ्गका मूल्य एक प्रतिका।=) है । एक साथ २५ या उससे अधिक प्रतियाँ लेनेपर २५) सैकड़ा अर्थात् ।) प्रति पञ्चाङ्ग । डाक या रेलखर्च अलग। पञ्चाङ्ग बाँटनेवाले तथा विक्रेताओंको इस सुविधासे लाभ उठाना चाहिये। अभी इस सालके लगभग ६ महीने शेष हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क

'मानवता-अङ्क'

(१) सम्मान्य पाठकोंको विदित ही है कि 'कल्याण'का २३ वें वर्षका विशेषाङ्क 'मानवता-अङ्क' होगा। इसमें भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंके प्रख्यात तथा अनुभवी विद्वानोंके लेख रहेंगे। हमारे पास अबतक जो सामग्री एकत्र हुई है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें मानवताके प्रायः सभी अङ्गोंपर विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विशद विवेचन किया गया है। इससे यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि यह अङ्क अत्यन्त ही उपादेय, सभीके लिये विशेष उपयोगी, रोचक, आकर्षक, शिक्षाप्रद और पथप्रदर्शक होगा। इसमें रंगीन तथा सादे चित्र भी पर्याप्त मात्रामें रहेंगे।

(२) छपाईके कागज तथा चित्रोंके आर्टपेपरके दाम बहुत बढ़ जानेपर भी मूल्य तनिक भी न बढ़ाकर वही ७॥) ही रखा गया है। अतः पुराने ग्राहकोंको मनीआर्डरद्वारा ७॥) (साढ़े सात रुपये) भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये। इस बार जैसा अङ्क निकल रहा है, उसे देखते, उसके बहुत शीघ्र समाप्त हो जानेकी सम्भावना है। रुपये भेजते समय कूपनमें 'ग्राहक-संख्या' अवश्य लिखनेकी कृपा करें। नाम, पता, ग्राम या मुहल्लेका नाम, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि बड़े-बड़े साफ अक्षरोंमें अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' लिख दें और जहाँतक हो सके, नये-नये ग्राहक बनाकर उनका चंदा भिजवानेका सफल प्रयत्न करें। यह विशेषाङ्क बहुत ही उपयोगी होगा। रुपये मनीआर्डरद्वारा भेजने-भिजवानेमें जल्दी करनी चाहिये।

(३) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें ताकि व्यर्थ ही 'कल्याण' कार्यालयको डाक-खर्चकी हानि न सहनी पड़े।

(४) गीताप्रेसका पुस्तक-विभाग तथा 'महाभारत'-विभाग 'कल्याण'से अलग है। अतः 'कल्याण'के चंदेके साथ पुस्तकोंके तथा महाभारतके लिये रुपये न भेजें और पुस्तकोंके तथा महाभारतके आर्डर भी 'मैनेजर, गीताप्रेस' तथा 'मैनेजर, महाभारत-विभाग, गीताप्रेस'के नामसे अलग भेजें।

(५) जिन सज्जनोंको सजिल्द अङ्क लेना हो, वे १।) (सवा रुपया) अधिक यानी ८॥।) भेजें। परंतु यह ध्यान रहे कि सजिल्द अङ्क अजिल्द अङ्क भेजे जानेके बाद ही जा सकेंगे। इसलिये चार-छः सप्ताहकी देर होना सम्भव है।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

सम्मान्य लेखक महानुभावोंसे प्रार्थना

'कल्याण'के गताङ्कमें प्रार्थना की गयी थी कि 'लेख बहुत आ गये हैं; उन आये हुए लेखोंमेंसे भी बहुत-से लेख स्थानाभावसे नहीं छप सकेंगे। अतः अब लेख-रचना आदि कृपया न भेजें।' क्योंकि विशेषाङ्कके सीमित सात सौ पृष्ठोंसे बहुत अधिक सामग्री गताङ्कके समय ही आ चुकी थी। परन्तु हमारे कृपालु लेखक अबतक भी प्रचुर संख्यामें लेख भेजते ही जा रहे हैं। हमें दुःख है कि विशेषाङ्कमें उनका उपयोग नहीं हो सकेगा। अब पुनः प्रार्थना है कि जिन महानुभावोंसे लेख माँगे गये हैं, उनके अतिरिक्त अन्य महानुभाव लेखादि कृपया न भेजें। न छपनेपर हमें बड़ा संकोच होगा और लेखक महानुभावोंको भी कुछ कष्ट होना सम्भव है। इसीलिये पुनः यह विनीत प्रार्थना की जाती है। इस विवशतापूर्ण प्रार्थनाके लिये सब महानुभाव कृपया क्षमा करें।

विनीत—सम्पादक